महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

बी.एड. (दूर शिक्षा)

स्वअधिगम सामग्री :

शैक्षिक निर्देशन एवं परामर्श (042)

दूर शिक्षा निदेशालय

इकाई 1 – संकल्पना : निर्देशन

इकाई की संरचना

1.0 इकाई के उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 निर्देशन का अर्थ

1.3 निर्देशन की प्रकृति

1.31 निर्देशन के कार्य

1.4 शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता

1.4.1 शैक्षिक निर्देशन

1.4.2 व्यावसायिक निर्देशन

1.4.3 व्यक्तिगत निर्देशन

1.5 राष्ट्रीय विकास के लिए निर्देशन

1.6 निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.7 निर्देशन के उद्देश्य

1.8 निर्देशन के सिद्धान्त

1.9 निर्देशन में परीक्षणों एवं उपकरणों की भूमिका।

1.9.1 बुद्धि परीक्षण

1.9.2 उपलब्धि परीक्षण

1.9.3 योग्ता परीक्षण

1.9.4 व्यक्तित्व परीक्षण

1.9.5 संचयित रिकार्ड

1.9.6 वास्तविक रिकार्ड

1.9.7 मामला अध्ययन

1.9.8 साक्षात्कार

1.9.9 सामाजिक तकनीकी

1.0 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि –

- निर्देशन का सम्प्रत्यय समझ पायेंगे।
- निर्देशन की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न सन्दर्भों में निर्देशन की आवश्यकता समझ पायेंगे।
- निर्देशन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी मिल सकेगी।
- निर्देशन के उद्देश्यों को समझ पायेंगे।
- निर्देशन के सिद्धान्तों को समझ पायेंगे।
- निर्देशन में विभिन्न परीक्षणों एवं उपकरणों की भूमिका की जानकारी मिल सकेगी।

1.1 प्रस्तावना [Introduction]

समय की परिवर्तनशीलता के साथ-साथ जीवन की समस्याएँ अधिकाधिक जटिल बनती जा रही हैं। आचार और व्यवहार की शुद्धता और अशुद्धता के बारे में परम्परागत धारणाएँ और व्यक्तिगत मान्यताएँ भिन्न हो रही हैं। साथ ही व्यक्ति का जीवन इतना जटिल होता जा रहा है कि आज वह अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है।

अधुनिक समय में मानव जीवन ही शिक्षा है। अत: जीवन का विशिष्ट उद्देश्य व्यक्ति की सम्पूर्ण प्रतिभाओं का विकास करना है। मानव की प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत कर उन्हें विकास की पराकाष्ठा तक पहुचाँना है जिससे उसे समाज तथा वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिल सके। वर्तमान समय में वैज्ञानिक तकनीकी की प्रगति ने घर, विद्यालय, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आदि मूल्यों में भी व्यापक परिवर्तन किए हैं। अत: इन परिवर्तनों से आज का बालक दिशा भ्रमित हो रहा है कि वह किस पाठ्यक्रम व व्यवसाय के साथ समायोजित कर सके।

इस प्रकार की परिस्थितियों ने एक ऐसे विचार को जन्म दिया जिससे व्यक्ति को उसके सम्पूर्ण विकास करने में सहायता दी जा सके। इसी विचार को व्यवस्थित रूप में निर्देशन कहा जाता है। जिससे बालकों को उनकी योग्यताओं के अनुसार निर्देशन प्राप्त हो सके और उनके सर्वांगीण विकास से व्यक्ति विशेष तथा अप्रत्यक्ष रूप से देश भी लाभान्वित हो सके।

1.2 निर्देशन का अर्थ [Meaning of Guidance]

निर्देशन को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न रूप से परिभाषित किया है। निर्देशन के अर्थ को निम्न परिभाषाओं की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है –

नैप (Knapp) ने निर्देशन को निम्न प्रकार परिभाषित किया है, "किसी विद्यार्थी के बारे में सीखना या जानना, उसे समझने में सहायता देना, उसमें तथा उसके वातावरण में परिवर्तन लाना जो उसके और विकास में सहायक हो, निर्देशन है। "

कार्टर बी, गुड के अनुसार, "निर्देशन छात्रों या व्यक्तियों को ज्ञान व विवेक प्राप्त करने में सहायता देने और आत्मनिर्देशन की दिशा में अग्रसर करने के दबाव या आदेश से मुक्त व्यवस्थित सहायता है। "

प्रोक्टर ने निर्देशन की परिभाषा में इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है, "निर्देशन एक सेवा है जिसका निर्माण व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह को सहायता प्रदान करने हेतु हुआ है ताकि वे वातावरण के साथ आवश्यक समायोजन कर सकें जिसका सम्बन्ध विद्यालय उसके अतिरिक्त है।"

एमरी स्टूप्स ने निर्देशन को स्वयं की क्षमताओं के विकास में सहायता मानते हुए लिखा है कि, "व्यक्ति को स्वयं तथा समाज के उपयोग के लिए स्वयं की क्षमताओं के अधिकतम विकास के प्रयोजन में निरंतर दी जाने वाली सहायता ही निर्देशन है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का गहनता से विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि निर्देशन एक संयुक्त सेवा है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करता है कि वह व्यक्ति अपनी समस्याओं का हल स्वयं कर सके एवं स्वयं के सर्वांगीण विकास हेतु कार्य कर सके। यह एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपनी क्षमताओं, रूचियों, अभिवृत्तियों, योग्यताओं का इस प्रकार विकास करता है कि वह अपने आपको वातावरण के साथ समायोजित करता है और जटिल से जटिल परिस्थितियों में निर्णय भी ले सकता है।

1.3 निर्देशन की प्रकृति [Nature of Guidance]

1. निर्देशन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
2. निर्देशन व्यक्ति पर बल न देकर समस्या पर बल देता है।
3. निर्देशन भावी जीवन की तैयारी में सहायक है।
4. निर्देशन विद्यार्थियों को शिक्षा के क्षेत्र में समायोजित करने में मदद करता है।
5. यह सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए सेवा है।
6. निर्देशन का क्षेत्र बहुत व्यापक है।
7. निर्देशन सेवार्थी केन्द्रित प्रक्रिया है।

8. निर्देशन व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है।

9. निर्देशन एक प्रकार से संगठित सेवा है।

10. निर्देशन से स्वनिर्देशन की योग्यता का विकास होता है।

11. निर्देशन अनेक सेवाओं का समूह है।

12. निर्देशन व्यक्ति को जीवन में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों रूपों में अपना योगदान देता है।

13. निर्देशन अपने दृष्टिकोण को दूसरे पर थोपना नहीं है।

14. यह शिक्षा की एक अर्न्तनिहित प्रक्रिया है।

15. निर्देशन एक सामान्यीकृत तथा विशिष्टीकृत सेवा है। अर्थात् माता-पिता परिवार से भी व्यक्ति निर्देशन प्राप्त करता है और प्रशिक्षित व्यक्तियों से भी निर्देशन प्राप्त करता है।

1.3.1 निर्देशन के कार्य [Function of Guidance]

निर्देशन की प्रकृति को उसके कार्यों के सन्दर्भ में भी समझा जा सकता है। **जेरान** तथा **रिक्सि** ने निर्देशन के निम्लिखित आठ कार्य बताये हैं –

1. व्यक्ति को ऐसे अवसर उपलब्ध कराना जिससे कि वह अपने कार्य क्षेत्र एवं शैक्षिक प्रयासों के विषय में और अधिक सीख सके।
2. अपनी मानसिक क्षमताओं के सन्दर्भ में व्यक्ति अपनी आकाँक्षाओं को जान सके, उस कार्य में उसकी सहायता करना।
3. व्यक्ति की सहायता इस उद्देश्य से करना कि वह अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को समझे, स्वीकार करे और उन्हें काम में लाये।
4. व्यक्ति को अपनी योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों तथा अभिवृत्तियों की जानकारी प्राप्त करने में सहायता पहुँचाना।
5. व्यक्ति को इस प्रकार सहायता करना कि वह इतना अच्छा आदमी बन जाये जितनी की उसमें क्षमता है।
6. व्यक्ति को अधिक से अधिक आत्मनिर्देशित बनने में सहायता देना।
7. वांछित मूल्यों के विकास में व्यक्ति की सहायता करना।
8. व्यक्ति को ऐसे अनुभव प्राप्त करने में सहायता करना जो कि उसकी निर्णय शक्ति में वृद्धि करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि निर्देशन व्यक्ति में निहित सम्भावनाओं के अनुसार उसके पूर्ण विकास पर बल देता है।

स्वः मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. निर्देशन किसे कहते हैं ? निर्देशन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।
2. विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों ने निर्देशन को किस प्रकार परिभाषित किया है।
3. निर्देशन क्या है ? निर्देशन की प्रकृति एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए।

1.4 शैक्षिक , व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता [Importance of Educational Vocational & Personal Guidance]

1.4.1 शैक्षिक निर्देशन :- निर्देशन के विभिन्न प्रकारों में से सबसे महत्वपूर्ण प्रकार शैक्षिक निर्देशन है। शैक्षिक निर्देशन का सीधा सम्बन्ध विद्यार्थी से होता है। शैक्षिक निर्देशन का मुख्य लक्ष्य **विद्यार्थियों में स्कूली वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने की योग्यता का विकास करना तथा विद्यार्थियों में आवश्यक जागरूकता एवं संवेदनशीलता पैदा करना ताकि वे उचित अधिगम लक्ष्यों, उपकरणों, परिस्थितियों आदि का स्वयं चयन कर सकें।** बालक विद्यालय वातावरण में समायोजन स्थापित कर सके इसीलिए शिक्षा में निर्देशन को अभिन्न अंग माना गया है क्योंकि शैक्षिक निर्देशन को बालक की वृद्धि के सन्दर्भ में देखा जाता है।

जोन्स के अनुसार, "शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध विद्यार्थियों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों , पाठ्यक्रम चुनावों एवं विद्यालयी जीवन से सम्बद्ध समायोजनों के लिए अपेक्षित है। "

शैक्षिक निर्देशन के चार प्रमुख कार्य हैं–

1. विद्यार्थी की क्षमता, रूचि एवं साधनों के अनुसार शैक्षिक योजना का निर्माण करना।
2. विद्यार्थियों की भावी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना।
3. शैक्षिक कार्यक्रम में आवश्यक प्रगति के लिए सहायक होना।
4. विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए।

मायर्स ने भी शैक्षिक निर्देशन को विद्यार्थी के विकास या शिक्षा के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की प्रक्रिया बताया है। इस दृष्टि से शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की शिक्षा के दौरान हर स्तर पर होना चाहिए।

1.4.2 व्यावसायिक निर्देशन :- व्यावसायिक निर्देशन मात्र एक तकनीकी प्रक्रिया ही नहीं जिससे किसी व्यक्ति को किसी व्यवसाय में 'फिट' कर दिया जाये और न ही व्यक्ति किसी व्यवसाय के लिए ही "पैदा" हुआ है। सामान्य बुद्धि वाले को विभिन्न व्यवसायों में समायोजित किया जा सकता है। व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित क्षमताओं, योग्यताओं तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में परिवर्तित परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन में व्यवसाय के चयन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए प्रदान की जाने वाली वह सहायता शामिल है जो व्यावसायिक अवसरों के लिए अपेक्षित योग्यताओं को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है।

सुपर के अनुसार, "व्यावसायिक निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह अपने व्यवसाय से सामंजस्य स्थापित कर सके, अपनी शक्तियों का प्रभावशाली तरीके से उपयोग कर सके तथा उपलब्ध सुविधाओं द्वारा समाज का आर्थिक विकास कर सके।"

क्रो एवं क्रो ने भी व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य बताए हैं। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया में व्यवसाय चार्ट, व्यवसाय विवरण पत्रिका, वार्ताओं आदि के माध्यम से विद्यार्थी की व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जाती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन व्यक्तियों को विभिन्न व्यवसायों में समायोजित होने में सहायता करता है। इसीलिए व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन-

1. एक प्रक्रिया है।
2. व्यवसाय चयन तथा व्यवसाय-समायोजन के लिए आवश्यक है।
3. विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक गुणों तथा योग्यताओं के बारे में जानना।
4. विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराने की प्रक्रिया।

1.4.3 व्यक्तिगत निर्देशन :- व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्तिगत-मनोवैज्ञानिक या संवेगात्मक सम्बन्ध जो कि व्यक्ति स्वयं से विकसित कर लेता है, शामिल किया जाता है। पैटरसन ने व्यक्तिगत निर्देशन में सामाजिक, मनोवेगात्मक तथा अवकाश सम्बन्धी समस्याएँ, मनोवेगात्मक समायोजन सामाजिक समायोजन तथा अवकाश एवं मनोरंजन की समस्याओं के समाधान के लिए शामिल किया जाता है। जीवन के चरित्र सम्बन्धी तथा आध्यात्मिक पक्ष को भी व्यक्तिगत निर्देशन में शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार, व्यक्तिगत निर्देशन का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक एवं भौतिक पक्षों में सामंजस्य पैदा करना है। क्योंकि ऐसा देखा गया है कि कई बार व्यक्ति उच्च स्तर की शैक्षिक योग्यता

तथा व्यावसायिक क्षेत्र में संतोषजनक प्रगति के बावजूद भी अनेक प्रकार के सामान्य व्यवहारों तथा सामाजिक अवगुणों से घिरे रहते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने परिवार, पड़ोस तथा समुदाय के अन्य सदस्यों के बीच उपेक्षापूर्ण जीवन व्यतीत करता है परिणाम स्वरूप व्यक्ति प्रगतिशील शांतिपूर्ण जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थितियों में व्यक्तिगत निर्देशन अति आवश्यक हो जाता है।

अत: व्यक्तिगत निर्देशन में निम्न प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है –

1. स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास सम्बन्धी समस्यायें।
2. संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धी समस्यायें।
3. पारिवारिक जीवन एवं पारिवारिक सम्बन्धों से जुडी समस्यायें।
4. धर्म,चरित्र, आदर्श एवं मूल्यों से सबंधित समस्याएँ।
5. यौन, प्रेम एवं विवाह सम्बन्धी समस्याएँ।

शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन को निम्न रेखाचित्र के माध्यम से और अधिक स्पष्ट प्रकार से समझा जा सकता है।

निर्देशन के प्रकार

शैक्षिक निर्देशन	व्यावसायिक निर्देशन	व्यक्तिगत निर्देशन
विद्यालयों में समायोजन, पाठ्यक्रम का चयन तथा भावी सम्भावनाओं को जानना, शैक्षिक कार्यक्रम में प्रगति, विद्यार्थियों की शैक्षिक आवश्यकताएँ पूरी करना , शिक्षा के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करना।	व्यवसाय चयन, व्यवसाय समायोजन , विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक गुणों। योग्यताओं के बारे में जानना, विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराने की प्रक्रिया।	स्वास्थ्य एवं शारीरिक विकास, संवेगात्मक व्यवहार, पारिवारिक जीवन, यौन, प्रेम एवं विवाह, धर्म, चरित्र, आदर्श, मूल्य, आर्थिक समस्याओं, सामाजिक सम्बन्धों की समस्याओं को जानना एवं उनका समाधान करना

स्व: मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।
2. व्यवसायिक निर्देशन तथा व्यक्तिगत निर्देशन में क्या अन्तर है।

राष्ट्रीय विकास में निर्देशन

1.6 निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि [Historical Background of Guidance]

जब से मानव सभ्यता का उदय हुआ है, मानव को जीवन यापन करने के लिए निर्देशन मिला ही है। जीवन में निर्देशन का स्थान महत्वपूर्ण है। प्राचीन सभ्यताओं में निर्देशन के तरीके अलग-अलग थे। वर्तमान समय में ये अलग-अलग है अत: निर्देशन के विकास क्रम को निम्नलिखित चरणों में समझने का प्रयास करेंगे।

1.6.1 प्राचीन भारत में निर्देशन :- प्राचीनकाल में वर्ण-व्यवस्था का बोलबाला था तथा शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् गुरू अपने दीक्षान्त उपदेश में जीवन की सफलता के लिए आवश्यक उपदेश देते थे ऐसा ही एक उपदेश "तैत्रिरीय उपनिषद" में मिलता है जिसके मुख्य अंश का भाव है – सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो, अपने व्यवसाय से सम्बन्धित अध्ययन से प्रमाद मत करो। अब तुमने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है किन्तु यह मत समझना कि आगे अध्ययन की क्या आवश्यकता है अत: अपनी दक्षता में वृद्धि करते जाओ। यही शिक्षा है, यही आदेश है, वेद, उपनिषद् भी यही कहते हैं।

1.6.2 प्राचीन यूनान में निर्देशन :- यूनान में निर्देशन का प्रारम्भ प्लेटो से माना जाता है। प्लेटो ऐसे समाज के निर्माण में प्रयत्नशील थे जहाँ सृजनात्मक ढंग से कार्य की व्यवस्था हो। यह सब, स्वाभाविक ही निर्देशन व्यवस्था की अपेक्षा रखता है और प्लेटो ने शिक्षा में निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

प्लेटो के अनुयायियों तथा बाद में यूनानी विचारकों ने भी किसी न किसी रूप में निर्देशन की ओर ध्यान दिया। ये विचारक शिक्षा के बौद्धिक एवं सामाजिक दोनों ही पक्षों पर समुचित बल देते थे। शिक्षा की व्यवस्था समाज की आवशूयकताओं के अनुरूप की जाती थी। फलत: अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशन की सहायता इस उद्देश्य को प्राप्त करने में ली जाती थी। अरस्तू ने भी शिक्षा में निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

इस प्रकार प्लेटो से लेकर उसके अनुयायियों एवं उसके बाद के विचारकों ने यूनानी युवा पीढ़ी की शिक्षा की व्यवस्था करते हुए निर्देशन को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

1.6.3 आधुनिक काल में निर्देशन :- निर्देशन का वर्तमान औपचारिक व सुगठित स्वरूप बीसवीं सदी की देन है। आधुनिक काल में निर्देशन का जन्मस्थान संयुक्तराज्य अमेरिका का बोस्टन नगर माना जाता है तथा फ्रेंक पारसन्स को व्यावसायिक निर्देशन का जन्मदाता माना जाता है सन् 1905-1906 में पारसन्स ने ब्रेड विनर्स इंस्टीट्यूट की स्थापना की जिसके माध्यम से योजनाबद्ध ढंग से व्यावसायिक निर्देशन का काम प्रारम्भ हुआ। सन् 1908 में पारसन्स ने 'वोकेशन ब्यूरो' की स्थापना की तथा निर्देशकों के समक्ष प्रथम बार 'व्यावसायिक निर्देशन' शब्द का प्रयोग किया। बाद में वोकेशनल ब्यूरो को हार्वर्ड

विश्वविद्यालय का व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो बना दिया गया। सन् 1910 के बाद अमेरिका में 'राष्ट्रीय शिक्षा संघ' तथा 'औद्योगिक शिक्षा विकास समिति' आदि संस्थानों ने निर्देशन आन्दोलन में अपना ठोस योगदान दिया। प्रथम विश्वयुद्ध में निर्देशन आन्दोलन का तेजी से विकास हुआ जब युद्ध की आवश्यकताओं के अनुरूप सैनिकों तथा अन्य अधिकारियों के वैज्ञानिक ढंग से चुनाव तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया गया।

पारसन्स शिक्षा के क्षेत्र में भी निर्देशन के महत्व को स्वीकार करते थे। उनके देहान्त के बाद उनके द्वारा स्थापित ब्यूरो का कार्यभार डेविस एच.हीलर, फ्रेडरिक एच. एलेन तथा मेयर ब्लूम फील्ड ने संभाला। इनके द्वारा विद्यालयी शिक्षकों को प्रशिक्षित करने पर बल दिया गया।

- **इंग्लैण्ड में निर्देशन कार्य का विकास :-** इंग्लैण्ड में निर्देशन का विकास 18 वीं शताब्दी में हुआ जब श्रम मंत्रालय ने राष्ट्रीय रोजगार कार्यालयों में निर्देशन कार्य प्रारम्भ किया। इंग्लैण्ड में निर्देशन के विकास का सूत्रपात सैमुअल हार्टलिव ने द्वारा किया गया। जॉन मिल्टन, विलियम पेटी, जॉन ड्यूवी आदि का भी योगदान इस दिशा में उल्लेखनीय है। वास्तव में इन विचारकों ने निर्देशन की नींव तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन विचारकों के गम्भीर प्रयत्नों के फलस्वरूप ही इंग्लैण्ड की स्थानीय संस्थाओं तथा तात्कालिक सरकारों में निर्देशन सेवाओं का स्पष्ट रूप उभरा। सन् 1944 में इंग्लैण्ड सरकार द्वारा पारित एक कानून के आधार पर ही निर्णय लिया गया कि निर्देशन का व्यापक स्तर पर प्रयोग जरूरी कर दिया जाये।

फ्रांस में निर्देशन का विकास :- सर्वप्रथम 1922 में एक सरकारी निर्णय के अनुसार फ्रांस में निर्देशन को आवश्यक घोषित किया गया तथा इस क्रम में व्यावसायिक निर्देशन कार्यालय स्थापित किए गए। सन् 1928 में शिक्षा मंत्रालय के व्यावसायिक निर्देशन संस्थान' की स्थापना की गई। इस संस्थान ने देश के निर्देशनकर्ताओं तथा परामर्शदाताओं को प्रशिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ किया। स्वयंसेवी संस्थाओं ने भी व्यावसायिक निर्देशन हेतु अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आगे चलकर पेरिस में 'चैम्बर ऑफ कामर्स' की स्थापना की गई जो उन बालकों की सहायता देने का कार्य करता था जो विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद ही किसी व्यवसाय में लगना चाहते थे। वहां निर्देशन सेवा का संचालन एवं नियंत्रण वर्तमान में श्रम एवं शिक्षा मंत्रालय के संयुक्तप्रयासों के अधार पर किया जाता है।

- **जर्मनी में निर्देशन का विकास :-** प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् जर्मनी में स्वयंसेवी संस्थाओं ने अपना व्यापक सहयोग व्यावसायिक निर्देशन के विकास में दिया। 1900 ई. के आस-पास वहाँ व्यवसाय चुनने की इच्छुक महिलाओं के लिए विशेष सूचना-केन्द्रों की स्थापना हुई तथा प्रथम विश्व युद्ध के

पश्चात् सरकार द्वारा एक 'राष्ट्रीय सार्वजनिक निर्देशन संस्थान' की स्थापना की गई। जिसका क्षेत्र व्यावसायिक निर्देशन तक ही सीमित रखा गया था।

जर्मनी में 1927 में एक कानून पारित हुआ जिसके आधार पर देश के बेरोजगार लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने तथा व्यावसायिक निर्देशन का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर ले लिया। अधिकांश नगरों में व्यावसायिक निर्देशन कार्यालयों की स्थापना की गई तथा इनके द्वारा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का भी प्रयोग किया जाने लगा तथा सन् 1933 तक निर्देशन का विकास विस्तृत हो गया। फ्रेंकफर्ट में 'राष्ट्रीय संस्थान' की स्थापना हुई तथा मूल्यांकन की नूतन पद्धतियों व परीक्षणों के आधार पर सूचनाएँ प्रदान करने हेतु अनेक व्यावहारिक प्रयास किए गए।

- **आधुनिक भारत में निर्देशन का विकास :-** भारत में निर्देशन आन्दोलन का प्रारम्भ 20 वीं सदी के चतुर्थ दशक में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त इसकी आवश्यकता अधिक अनुभव की गई तथा इस ओर शिक्षा संस्थाओं व विशेषकर विश्वविद्यालयों ने निर्देशन ब्यूरो के संगठन में विशेष भूमिका अदा की। भारत को निर्देशन परिचित से कराने का श्रेय भी **श्री सोहनलाल** एवं **श्री के.जी. सैयदेन** को है। भारत में 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विभाग जिसके अध्यक्ष श्री जी.एस.बोस थे – ने निर्देशन कार्य प्रारम्भ किया। मुम्बई में भी व्यावसायिक निर्देशन सम्बनधी एक शाखा रिटायर्ड सी.ए.श्री बाटलीबॉय के प्रयत्न से 1941 में खोली गई। जालंधर में संयुक्तईसाई मिशन, बम्बई में रोटरी क्लब तथा वाई. एम. सी. ए. कलकत्ता ने इस सम्बन्ध में कई पुस्तकें प्रकाशित कीं।

सन् 1947 में उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में मनोविज्ञान ब्यूरो की स्थापना आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में की गई जिसका उद्देश्य उत्तर प्रदेश की माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के साथ निर्देशन का भी प्रावधान करना था। इसके साथ ही साथ भारत में विभिन्न प्रान्तों में व्यावसायिक सूचनाओं के एकत्रीकरण, वितरण तथा मानव मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्माण के उद्देश्य से निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए गए। पटना विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक शोध संस्थान ने विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्रों में निर्देशन सेवाओं के संगठन में अपना योगदान दिया।

सन् 1952-53 में मुदालियर आयोग (माध्यमिक शिक्षा आयोग) ने निर्देशन को महत्वपूर्ण समझा तथा इससे सम्बन्धित सुझाव भी अपनी रिपोर्ट में दिए-

1. शिक्षा निर्देशन में शिक्षा अधिकारियों के कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाए।
2. सभी शिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित निर्देशन कार्यकर्ताओं एवं कैरियर मास्टर्स की नियुक्ति की जाए।
3. केन्द्र द्वारा समस्त राज्यों में प्रशिक्षण केन्द्र खोलने चाहिए जहाँ निर्देशनकर्ता उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा दिए गए उक्त सुझावों के आधार पर **'केन्द्रीय मंत्रालय'** ने **'केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो'** की स्थापना कर निर्देशन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए।

सन् 1954 में दिल्ली में **'केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो'** की स्थापना की गई। सन् 1960 में **'अखिल भारतीय निर्देशन कार्यालय भवन'** की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य देश की माध्यमिक शिक्षा की प्रगति को जाँचना तथा इस क्षेत्र से सम्बन्धित संस्थानों को प्रोत्साहन देना था। सन् 1961-62 में लखनऊ विश्वविद्यालय में **'शिक्षक परामर्शदाताओं'** की योजना प्रारम्भ की गई तथा **'विश्वविद्यालय रोजगार ब्यूरो'** की भी स्थापना टैगोर पुस्तकालय के एक भाग में की गई।

सन् 1964 में कोठारी आयोग की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष डॉ. दौलतसिंह कोठारी थे। इस आयोग ने भी निर्देशन को महत्वपूर्ण माना तथा इससे सम्बन्धित निम्नलिखित संस्तुतियाँ दीं।

1. निर्देशन को शिक्षा का एक अभिन्न अंग मानना चाहिए। निर्देशन छात्रों को घर तथा विद्यालयी परिस्थितियों में सर्वोत्तम संभावित समायोजन में भी सहायता प्रदान करे।
2. निर्देशन प्राथमिक कक्षा की सबसे छोटी इकाई से प्रारम्भ करना चाहिए।
3. प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में उन्हें नैदानिक परीक्षणों एवं व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्याओं से अवगत कराने का प्रावधान हो।
4. यथासम्भव शिक्षकों हेतु 'लघु सेवा पाठ्यक्रम' की व्यवस्था की जाए।
5. माध्यमिक स्तरीय अध्यापकों के प्रशिक्षण में निर्देशन प्रत्ययों व तकनीकों को कार्यक्रम में शामिल किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में भी इस पक्ष पर विशेष बल दिया है। इसके पश्चात् राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, (2000), (2005) में भी उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों को विषय चुनकर किस धारा में प्रवेश लेना है इसके लिए विद्यालयों में कैरियर अध्यापक नियुक्त करने की बात की, परन्तु आज की निर्देशन के क्षेत्र में आशानुरूप कार्य नहीं हो पा रहा है। आज प्रत्येक क्षेत्र में जिस तीव्रता से विकास हो रहा है उसे देखते हुए विभिन्न प्रकार के निर्देशन की आवश्यकता तेजी से अनुभव की जा रही है।

स्वः मूल्यांकन (Self Evaluation)

1. निर्देशन के विकास में फ्रैंक पारसन्स के योगदान का संक्षिपत विवरण दीजिए।
2. निम्नलिखित देशों में निर्देशन के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए-
   (i) फ्रांस (ii) संयुक्त राज्य अमेरिका (iii) जर्मनी
3. आधुनिक भारत में निर्देशन सेवाओं के विकास पर प्रकाश डालिए।

1.7 निर्देशन के उद्देश्य [Objectives of Guidance]

निर्देशन की प्रक्रिया एक पूर्ण उद्देश्य पूर्ण प्रक्रिया है। बिना उद्देश्य निर्धारित किए इस प्रक्रिया का पूर्ण होना सम्भव ही नहीं है। निर्देशन के कार्य क्षेत्रों में विभिन्नता होने के कारण ही निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य होते हैं। यदि हम बिना किसी उद्देश्य के निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ करते हैं तो निर्देशन में संलिप्त विभिन्न उप-क्रियाओं को दिशा नहीं मिल सकती और वे क्रियायें निरर्थक होकर रह जाती हैं।

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य बदलते रहते हैं, अर्थात शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य होते हैं। इसका वर्णन निम्न प्रकार है –

1.7.1 प्राथमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य :- शिक्षा में प्राथमिक स्तर का तात्पर्य कक्षा 1-8 तक का स्तर होता है। पहली कक्षा में बालक पहली बार घर से बाहर निकलता है। घर से बाहर निकलकर बालक जब विद्यालय के वातावरण में प्रवेश करता है तो उसे कई प्रकार के तालमेल करने होते हैं। स्कूल का वातावरण बच्चे के लिए बहुत विस्तृत होता है। बच्चा स्कूल में आकर कई प्रकार के व्यक्तियों, बालकों तथा अध्यापकों के सम्पर्क में आता है। साथ ही, स्कुल में आकर माता-पिता जैसी सुरक्षा बालक को प्राप्त नहीं होती। बच्चा भयभीत तथा संकोची होने के कारण स्कूल में दबा-दबा सा रहता है। वे बच्चे तो और भी कठिनाई में पड़ जाते हैं जो पूर्ण रूप से अपने माता-पिता पर ही आश्रित रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में निर्देशन के उद्देश्यों में यह भी शामिल हो जाता है कि निर्देशन प्रदान करने वाला व्यक्ति ऐसे बच्चों का पता लगाये और उनकी समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को नियंत्रित करे।

प्राथमिक स्तर पर बच्चे के विकास में शिक्षक, माता-पिता निर्देशनकर्ता, स्कूल, समाज के लोग सभी का योगदान होता है। इन सभी के कार्यों में तालमेल भी आवश्यक है। ये सभी लोग बालक को समाज तथा विद्यालयी क्रियाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में मदद करते हैं। इन सब को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक स्तर पर निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं –

1. सभी प्रकार के कार्य-कर्ताओं के कार्यों में तालमेल बिठाना जैसे- शिक्षक, स्कूल, समाज-सेवक के कार्य तथा निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्ति का कार्य इत्यादि।
2. बच्चों को स्कूल के रीति-रिवाजों तथा स्कूल की कानून व्यवस्था के अनुसार ढालने में सहायता का उद्देश्य।
3. स्कूल-क्रियाओं के प्रतीक्षा उचित दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता का उद्देश्य।
4. बच्चों के शारीरिक तथा संवेगात्मक स्थिरता के विकास में सहायता का उद्देश्य।

5. स्कूल में समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का पता करना तथा उन्हें नियंत्रित करने का उद्देश्य।
6. बच्चों को स्वावलम्बी बनाने का उद्देश्य।
7. बच्चों में सहयोग की भावना पैदा करने का उद्देश्य।
8. प्राथमिक स्तर से स्कूल के अगले उच्च स्तर के लिए बच्चों को तैयार करने का उद्देश्य।

1.7.2 माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य :- बच्चा प्राथमिक स्तर से निकलकर माध्यमिक स्तर में प्रवेश करता है। इस स्तर पर निर्देशन का कार्य-क्षेत्र प्राथमिक-स्तर पर निर्देशन के कार्य-क्षेत्र की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। माध्यमिक स्तर पर बालक किशोरावस्था में प्रवेश कर जाता है, उसके संवेग, चिन्तन, निर्णय प्रक्रिया में बदलाव आता है इसके अतिरिक्त इस स्तर पर विद्यार्थी स्वयं को व्यक्तिगत, सामाजिक, सांवेगिक, आर्थिक आदि समस्याओं से घिरा पाता है तथा इन समस्याओं का समाधान अति आवश्यक हो जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशन की व्यापक एवं संगठित सेवाओं की आवश्यकता बनी रहती है।

अत: माध्यमिक स्तर पर निर्देशन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं –

1. प्राथमिक स्तर से निकलकर जब बालक माध्यमिक स्तर में आता है तब उसे नये वातावरण का सामना करना पड़ता है इसके अतिरिक्त उसे नये साथियों, अध्यापकों के बीच तालमेल बिठाने में कठिनाई उत्पन्न होती है अत: माध्यमिक स्तर पर निर्देशन का यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों की इन समस्याओं के समाधान में उसकी सहायता करें।
2. माध्यमिक स्तर पर आकर विद्यार्थियों के समक्ष विषय चयन में कठिनाई की समस्या उत्पन्न हो जाती है अत: माध्यमिक स्तर पर बालकों में विषय चयन की समझ पैदा करना निर्देशन का उद्देश्य होना चाहिए।
3. माध्यमिक स्कूलों में विद्यमान निर्देशन सेवा का उद्देश्य बालकों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को दूर करना होना चाहिए।
4. विद्यार्थियों को शिक्षा के नये उद्देश्यों से परिचित करवाने में सहायता करना।
5. अच्छे नियोजन की आवश्यकता से विद्यार्थियों को परिचित करवाने में सहायता करना।
6. बालक की संवेगात्मक तथा व्यक्तिगत समस्याओं को दूर करने में सहायता करना।
7. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के बारे में छात्रों को उचित निर्देशन प्रदान करना।
8. विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए उचित अभिप्रेरणा पैदा करना।

1.7.3 महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य :- जब बालक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है तब वह पूर्ण युवक के रूप में विकसित हो चुका होता है और उसके व्यक्तित्व का अपना एक स्वरूप बन जाता है। उनमें से बहुतों के

समक्ष स्पष्ट उद्देश्य होते हैं। लेकिन बहुत से विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जो कॉलेज में आकर भी विभिन्न समस्याओं से स्वयं को घिरा पाते हैं।

इस प्रकार की परिस्थितियों में उच्च शिक्षा के निर्देशन कार्यक्रम का उद्देश्य यही रहता है कि ऐसे दोनों प्रकार के विद्यार्थियों की तात्कालिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान दें। जो विभिन्न कारणों से अपने कॉलेज के कार्यों में उन्नति करने के योग्य नहीं रह पाते तथा वे जो अपनी प्रतिभा का सदुपयोग उत्तम शैक्षिक सुविधाओं के कारण अपने कार्य के विभिन्न क्षेत्रों में भली-भाँति कर सकते हैं।

अत: उच्च शिक्षा के स्तर पर निर्देशन के उद्देश्यों को निम्नलिखित ढंग से भी प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में प्रवेश आदि से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध करवाना।
2. कॉलेज तथा विश्वविद्यालय में सहगामी क्रियाओं के सम्बन्ध में जानकारी देना।
3. विद्यार्थियों को उनकी आर्थिक कठिनाईयों को दूर करने में सहायता प्रदान करना।
4. विद्यार्थियों को विषयों के चयन में सहायता प्रदान करना जिससे वे अपने भावी कार्यक्रम एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सकें।
5. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान में सहायता करना।
6. विद्यार्थियों को अध्ययन के साथ-साथ रोजगार प्राप्त करने में सहायता देना।
7. विद्यार्थियों को आगामी अध्ययन के अवसरों (स्थनीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशों में) की जानकारी प्रदान करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निर्देशन कार्यक्रमों के उद्देश्य भी विस्तृत होते हैं तथा इनमें सुधार लाने के लिए और इनके परिणामों का विश्लेषण करने के लिए इस कार्यक्रम का प्रगतिशील होना अति आवश्यक है। इसके लिए हमें शोध कार्य पर अधिक बल देना चाहिए ताकि इस कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके।

1.8 निर्देशन के सिद्धान्त [principles of Guidance]

निर्देशन कार्यक्रम को सफलता पूर्वक चलाने के लिए निर्देशन के अर्थ के साथ-साथ यह समझना भी अति आवश्यक है कि निर्देशन की प्रक्रिया किन सिद्धान्तों पर आधारित है। निर्देशन के सिद्धान्तों को जान लेने के पश्चात् इस कार्यक्रम को अधिक सुगमता से लागू क्यिा जा सकता है। निर्देशन के सिद्धान्तों पर सभी मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षाशास्त्री एक मत नहीं हैं। उदाहरणार्थ – जोन्स ने निर्देशन के पॉच सिद्धान्त, हम्फ्रीज और ट्रेक्सलर ने सात सिद्धान्त, क्रो एवं क्रो ने चौदह सिद्धान्तों का वर्णन किया है। इन

सभी विद्वानों द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों में कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनका अनुकरण प्राय: सभी के द्वारा किया जाता है। निर्देशन के कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं –

1. व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकृत करना – समाज का निर्माण व्यक्तियों से ही होता है। समाज को शक्तिशाली एवं प्रगति सम्पन्न बनाने हेतु आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक सदस्य की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व को एक समान महत्व दिया जाये। निर्देशन का लक्ष्य ही यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी शक्तियों तथा क्षमताओं के अनुरूप अधिकतम विकास की ओर ले जाना होता है। अत: शिक्षा, व्यवसाय, परिवार आदि विभिन्न क्षेत्रों मे व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुरूप अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने पर बल देकर हम व्यक्ति की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते है।

2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं को महत्व देना :- प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व विशिष्ट होता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व व्यक्तियों की विभिन्नताओं का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए तथा उन अध्ययनों के परिणामों को आधार बनाकर ही व्यक्ति के विकास तथा समस्या समाधान के लिए निर्देशन की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए।

3. समस्त व्यक्तित्व को महत्व -: निर्देशन की प्रक्रिया में व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व को महत्व देना चाहिए क्योंकि यदि निर्देशनकर्ता व्यक्ति के एक या कुछ ही पक्षों का अध्ययन करेगा तो वह सही निर्देशन नहीं दे सकेगा।

4. सर्वांगीण विकास को प्राथमिकता :- व्यक्तित्व के विकास के लिए यह आवश्यक होता है कि उसके व्यक्तित्व का प्रत्येक पक्ष विकसित हो। व्यक्ति को व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए ध्यानपूर्वक कार्य करना चाहिए।

5. निर्देशन प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा हो :- निर्देशन का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है निर्देशन प्रक्रिया पूर्ण करने का उत्तरदायित्व किसी प्रशिक्षित व्यक्ति को देना चाहिए, ताकि वह व्यक्ति निर्देशन से सम्बन्धित व्यक्तियों तथा विभागों में सम्पर्क स्थापित करके इस कार्यक्रम को सुचारू रूप से क्रियान्वित कर सके।

6. निर्देशन का लचीला कार्यक्रम :- व्यक्ति तथा समाज की आवश्यरकताओं में भिन्निताएँ होती हैं। अत: इन आवश्यताओं को ध्यान में रखते हुए निर्देशन का कार्यक्रम बहुत कठोर न होकर लचीला होना चाहिए ताकि इसमें आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक परिवर्तन किए जा सके।

7. निर्देशन का क्षेत्र विस्तृत हो :- निर्देशन का लाभ केवल उन्हीं व्यक्तियों को ही नहीं मिलना चाहिए जो स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष रूप से निर्देशन माँगते हैं या इसकी आवश्यकता प्रदर्शित करते हैं। बल्कि निर्देशन

का लाभ उन व्यक्तियों के लिए भी होना चाहिए जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्देशन का लाभ उठा सकते हों। अत: इसके लाभ का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

8. कुशल व्यक्तियों का उत्तरदायित्व -: निर्देशन के कार्यक्रम में व्यक्तियों की विशिष्ट समस्याओं के समाधान के प्रयास किए जाते है। ऐसा करने का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं व्यक्तियों पर होना चाहिए जो इस कार्य को करने में अधिक कुशल हों।

9. निर्देशन सभी के लिए -: निर्देशन कार्यक्रम का सबसे प्रमुख सिद्धान्त यह है कि निर्देशन किसी एक या विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति के लिए न होकर सभी प्रकार के व्यक्तियों के लिए होना चाहिए क्योंकि जीवन के हर चरण में हर व्यक्ति को निर्देशन की आवयकता रहती है।

10. निर्देशन जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है -: निर्देशन प्रक्रिया जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है क्योंकि जीवन के हर पग पर व्यक्ति को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान के बिना व्यक्ति आगे कदम नहीं बढ़ा सकता।

स्व:मूल्यांकन [Self Evaluation]

1. निर्देशन के क्या उद्देश्य हैं ? एक प्राथमिक विद्यालय इन उद्देश्यों को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है ?
3. निर्देशन के प्रमुख सिध्दान्तों पर प्रकाश डालिए।

1.9 निर्देशन में परीक्षणों एवं उपकरणों की भूमिका[Importance of Tests & Tools in Guidance]

निर्देशन के कार्य को वैज्ञानिक, वस्तुनिष्ठ एवं प्रभावी बनाने के लिए व्यक्ति के बारे में आवश्यक तथ्य एकत्रित करने पड़ते हैं। यही संकलित आधार सामग्री शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत तथा अन्य प्रकार के निर्देशन में प्रयुक्त होती है क्योंकि निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति को सहायता पहुँचाना है। अत: निर्देशन कार्यकर्ता का पहला काम है, उसे जानना। सही तथा पूरी जानकारी होने पर ही प्रभावशाली निर्देशन दिया जा सकता है।

प्रभावशाली निर्देशन देने के लिए व्यक्ति से सम्बन्धित सही तथा पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए निर्देशन कर्ता विभिन्न प्रकार के परीक्षणों एवं उपकरणों की सहायता लेता है। निर्देशन की प्रकिया में प्रयुक्त महत्वपूर्ण परीक्षणों एवं उपकरणों की व्याख्या एवं उनकी भूमिका को निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

1.9.1 <u>बुध्दि परीक्षण</u> – बुध्दि एक अत्यन्त जटिल मानसिक प्रक्रिया है। यद्यपि बुध्दि वास्तव में क्या है इस पर विद्वान एक मत नहीं है किर भी इसे ऐसी मानसिक योग्यता मान सकते है-

(i) बुध्दि नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करती है॥

(ii) सम्बन्ध तथा सहसम्बन्ध स्थापित करती है।

(iii) उच्च विचारों को जन्म देती है।

(iv) पूर्वानुभवों से ज्ञानार्जन करती है।

निर्देशन प्रदान करने से पूर्व हमें यह समझ लेना चाहिए कि बालकों की योग्यताओं में स्वाभाविक अन्तर होता है। इस अन्तर के कारण सभी बालक समान रूप से प्रगति नहीं कर पाते हैं। ऐसी दशा में निर्देशनकर्ता के समक्ष एक जटिल समस्या उपस्थित हो जाती है। बुध्दि परीक्षा, बालकों में पाये जाने वाले अन्तर का ज्ञान प्रदान करके निर्देशनकर्ता को समस्या का समाधान करने में सहायता करती है जिससे निर्देशन को सही दिशा प्रदान की जा सके।

बुद्धि मापन हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षणों में एक ही प्रकार के प्रश्न न होकर अनेक प्रकार के परीक्षण पदों का प्रयोग किया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से बुद्धि परीक्षणों की विषय वस्तु अथवा विषय सामग्री का सम्बन्ध उन मानसिक क्रियाओं से है जिनके द्वारा व्यक्ति जन्म-जात विशेषताओं तथा पूर्व प्राप्त अनुभवों, दोनों की सहायता से नवीन परिस्थितियों अथवा समस्याओं के विभिन्न पक्षों को पूर्णत: समझ कर उन्हें अधिकाधिक सफलतापूर्वक हल करने का प्रयास करता है। बुद्धि मापन के लिए 1908 में सर्वप्रथम बिने (Binet) ने मानसिक आयु का विचार दिया तथा स्टर्न महोदय ने इसे स्वीकार करते हुए बुद्धि लब्धि ज्ञात करने हेतु एक सूत्र दिया–

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

वास्तविक आयु

IV. प्रशासन के आधार पर
- व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण।
- सामूहिक बुद्धि परीक्षण।

I. विषय वस्तु के आधार पर
- व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण।
- सामूहिक बुद्धि परीक्षण।

II. रूप के आधार पर
- गति आधारित बुद्धि परीक्षण।
- शक्ति आधारित बुद्धि परीक्षण।

III. मानसिक योग्यताओं के स्वरूप रूप के आधार पर
- गति आधारित बुद्धि परीक्षण।
- शक्ति आधारित बुद्धि परीक्षण।

I. प्रशासन तथा विषय वस्तु के समेकित आधार पर

- व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
  - व्यक्तिगत शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
  - व्यक्तिगत अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
    - कागज पेंसिल बुद्धि परिक्षण
    - क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण
- सामूहिक बुद्धि परीक्षण
  - सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
  - सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

(क) व्यक्तिगत शब्दिक बुद्धि परीक्षण – इन परीक्षणों से तात्पर्य है कि एक समय पर एक ही व्यक्ति की बुद्धि का मापन किया जाना चाहिए। शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग पढ़े-लिखे लोगों पर ही प्रशासित किया जा सकता है।

उदाहरण – वैश्लर वैलेव्यू, बर्ट के तर्क शक्तिपरीक्षण, मिनेसोटा, जैसिल विकास अनुसूची आदि।

(ख) व्यक्तिगत अशाब्दिक बुद्धिपरीक्षण – यह परीक्षण अनपढ़ व्यक्तियों के लिए उपयोगी होते हैं। परीक्षणों में या तो ऐसे पद होते हैं जिनमें केवल पेंसिल की सहायता से चिन्ह लगाए जाते हैं या ऐसे पद होते हैं जिनमें कुछ सामग्री अथवा वस्तुओं का निर्देशानुसार प्रयोग करना होता है।

उदाहरण – भूलभूलैया परीक्षण-, चित्र पूर्ति परीक्षण, असमानताएं पहचानना, वस्तु संयोजन, चित्र विन्यास, आकृति फलक, ब्लाक डिजायन, पास एलांग आदि।

(ग)सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण – इन परीक्षणों के द्वारा एक समय में ही अनेक व्यक्तियों पर प्रशासित कर बुद्धि परीक्षा ली जा सकती है। शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण निम्नहै –

उदाहरण – वर्गीकरण परीक्षण, सादृश्य उपपरीक्षण-, सामान्य समझ परीक्षण सामान्य सूची सम्बन्धी परीक्षण, निष्कर्षात्मक परीक्षण आदि।

(घ) सामूहिक अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण – इन परीक्षणों द्वारा अधिकतर उन मानसिक प्रक्रियाओं की जाँच की जाती है जो शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों द्वारा होती है। अतंर केवल इतना है कि सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में भाषा का ज्ञान जरूरी नहीं है।

उदाहरण – शिकागो अशाब्दिक परीक्षण, पिगन अशाब्दिक परीक्षण, कैटिल का कल्चर फ्री टेस्ट रैविन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज आदि।

II. रूप के आधार पर बुद्धि परीक्षण – रूप के आधार पर बुद्धि परीक्षण दो प्रकार के होते हैं–

(क) शक्ति परीक्षण :- इन परीक्षणों द्वारा किसी व्याक्ति की एक विशेष क्षेत्र से सम्बबन्धित ज्ञान शक्ति की परीक्षा ली जाती है। इस प्रकार के परीक्षणों में प्रश्नों का कठिनाई स्तर धीरे -धीरे बढ़ता चला जाता है। इस प्रकार प्रथम सर्वाधिक कठिन होता है। इन परीक्षणों में समय को अधिक महत्व नहीं दिया जाता।

(ख) गति परीक्षण -: इन परीक्षणों में प्रश्नों का कठिनाई स्ुतर एक जैसा होता है किन्तु इसमें समय तत्व को अधिक महत्व दिया जाता है। परीक्षार्थी को एक निश्चित समय में ही प्रश्नों के उत्तर देने को कहा जाता है और प्रश्नों के सही उत्तरों के आधार पर बुद्धि का मापन होता है। इस प्रकार से परीक्षण मानसिक गति का मापन करते हैं।

II. मानसिक योग्यताओं के स्वरूप के आधार पर -: मानसिक योग्यताओं के स्वरूप के आधार पर बुद्धि परीक्षण निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं –

(क) सामान्य बुद्धि परीक्षण -: इस प्रकार के परीक्षणों का कार्य व्यक्ति की सामान्य बुद्धि का मापन करना होता है।

(ख) विशिष्ट बुद्धि परीक्षण -: इस प्रकार के परीक्षणों में प्रश्न किसी विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सम्मिलित किए जाते हैं। इन परीक्षणों का कार्य व्यक्ति की विशिष्ट बुद्धि का मापन करना होता है।

1.9.2 उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test) उपलब्धि परीक्षण को निष्पत्ति परीक्षण, साफल्यक परीक्षण, ज्ञानोपार्जन परीक्षण आदि नामों से भी जाना जाता है। निर्देशन में विशेषत: शैक्षिक निर्देशक में उपलब्धि परीक्षण का विशेष महत्व है। निष्पत्ति परीक्षण में विषय सम्बन्धी अर्जित ज्ञान की परीक्षा है। इन परीक्षणों के द्वारा क्षेत्रों के ज्ञान का मापन करते हैं। इस प्रकार छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का उपलब्धि परीक्षणों द्वारा मापन करके छात्रों के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त होता है, उस ज्ञान के आधार पर न केवल छात्रों का मार्गदर्शन किया जा सकता है बल्कि उन्हें परामर्श देकर उन्नति के शिखर की ओर पहुँचाने का प्रयास किया जा सकता है। **उपलब्धि परीक्षण के प्रकार -:** उपलब्धि परीक्षणों को निम्नलिखित रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

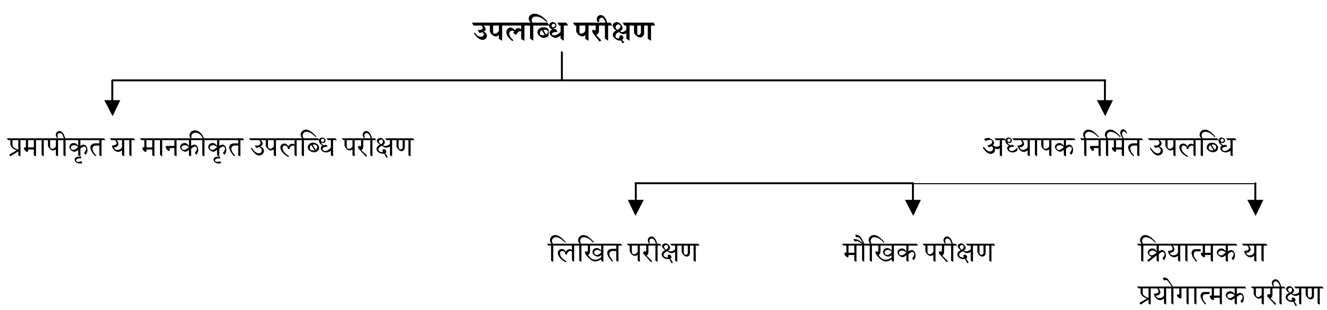

I. प्रमापीकृत परीक्षण – प्रमापीकृत ऐसे विषयनिष्ठ परीक्षणों को कहते हैं जिनके मानक तैयार किए जाते हैं। यह मानक आयु कक्षा स्तर आदि के आधार पर निर्मित किए जाते हैं। मानक तैयार करने के लिए परीक्षणों का निर्माण योजनाबद्ध तरीके से एक विशेष ढंग से तथा बड़ी सावधानी से किया जाता है। मानक तैयार करने से पूर्व उन्हें कई बार विद्यार्थियों पर प्रयोग करके उनके प्रबंध, परीक्षण विधि, भवन, परीक्षण समय, निर्देश, आवश्यक सावधानियाँ आदि सभी पूर्व निश्चित तथा पूर्व निर्धारित होती हैं। प्रश्नों के उत्तरों की कुँजी पहले ही तैयार कर ली जाती है। प्रश्नों के चयन में कठिनता स्तर को देखा जाता है। तथा एक

सूत्र द्वारा कठिनतम स्तर ज्ञात कर लिया जाता है। प्राय: परीक्षण में से उन प्रश्नों को निकाल दिया जाता है जिनका उत्तर 15 प्रतिशत या इससे कम प्रतिशत बालकों ने दिया हो, क्योंकि उन्हें उस स्तर के बालकों के लिए कठिन मान लिया जाता है। इसी प्रकार उन प्रश्नों को भी परीक्षण से निकाल दिया जाता है जिनका उत्तर 75 प्रतिशत या उससे अधिक विद्यार्थियों ने दिया हो क्योंकि उन्हें उस स्तर के लिए बहुत सरल मान लिया जाता है।

इस विधि से प्रश्नों का चयन करने के पश्चात् प्रत्येक प्रश्न की वैधता निश्चित की जाती है। एक प्रश्न को वैध बनाने के लिए उसकी विभेदकारिता को भी परखा जाता है। इस प्रकार अन्तिम रूप से परीक्षण तैयार हो जाने पर पूर्ण परीक्षण की एक बार फिर से वैधता व विश्वसनीयता स्थापित हो जाती है।

II. मानवीकृत परीक्षण वैषयिक होने के साथ-साथ विस्तृत एवं पूरे पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करने के कारण बालकों की उपलब्धि का पूर्ण रूप से परीक्षण करते हैं। इन परीक्षणों से विद्यार्थियों की तुलना एक ही मापदण्ड से की जा सकती है।

III. अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण – शिक्षक निर्मित परीक्षण आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनो प्रकार के होते हैं। सामान्य रूप से शिक्षकों द्वारा सभी विषयों पर परीक्षणों का निर्माण किया जाता है।

अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं –

(क) निबन्धात्मक परीक्षण – निबन्धात्मक परीक्षण, सर्वाधिक प्रचलित उपलब्धि परीक्षण हैं इन्हें शिक्षक बनाता है। इनमें प्रश्नों के उत्तर निबन्ध के रूप में देना पडता है, इसीलिए इनको निबन्धात्मक परीक्षण कहते हैं। हमारे देश में निबन्धात्मक परीक्षा का ही प्रचलन है। इस परीक्षा-प्रणाली में छात्रों को कुछ प्रश्न दे दिए जाते हैं, जिनके उत्तर उनको निर्धारित समय में लिखने पड़ते हैं।

ये परीक्षण कम प्रश्न संख्या होने से प्राय: पूरे पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्वि नहीं कर पाते, न ही सारे उद्देश्यों की जाँच सम्भव हो पाती है। छात्रों की उपलब्धि स्मृति पक्ष अच्छा होने पर निर्भर करती है। यदि उनके याद किए हुए प्रश्न आ जाते हैं तो उपलब्धि स्तर अच्छा माना जाता है, परन्तु वास्तविक ज्ञान की जाँच नहीं हो पाती है। इन परीक्षणों के मूल्यांकन में आत्मनिष्ठता का प्रभाव आ जाता है। तथा अनेक परीक्षकों द्वारा जाँच कराने पर अंकों में अन्तर पाया जाता है।

(ख) मौखिक परीक्षण –विद्यार्थियों की उपलब्धि मापन में मौखिक परीक्षण का भी विशेष महत्व है। भाषा ज्ञान में अभिव्यक्ति, प्रपढ़न, उच्चारण शुद्धता आदि की जाँच हेतु इनका प्रयोग उत्तम रहता है व विद्यार्थी की 'समझ' की जाँच भी इन परीक्षणों से सम्भव है। यद्यपि इन परीक्षणों के प्रशासन में समय अधिक लगता है, हर विद्यार्थी से अलग-अलग प्रश्न पुछे जाते हैं अत: मूल्यांकन में समानता का अभाव रहता है, परीक्षक की आत्मनिष्ठ ता भी उपलब्धि स्तर को प्रभावित करती है। परन्तु फिर भी

इन परीक्षणों की महत्ता है क्यों कि योग्यता मापन के साथ-साथ विद्यार्थी के उत्तर देने के ढंग आदि का भी पता चलता है।

(ग)क्रियात्मक परीक्षण – इस प्रकार के परीक्षण संगीत, सिलाई, शिल्पकला, लकड़ी, कागज आदि द्वारा बनाई गई वस्तुओं के आधार पर लिए जाते हैं। इन परीक्षणों में पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि क्रियात्मक दक्षता अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसी प्रकार विज्ञान, गृहविज्ञान तथा कृषिविज्ञान आदि विषयों में प्रयोग व परीक्षणके आधार पर उपलब्धि की जाँच की जाती है।

1.9.3 परीक्षणयोग्य (Aptitude Test) :- निर्देशन के क्षेत्र में योग्यतता/अभियोग्यता मापन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।अंग्रेजी भाषा का Aptitude शब्द Aptos से बना है जिसका अर्थ होता है – 'के लिए उपयुक्त'। अभियोग्यता किसी एक क्षेत्र या समूह में व्यक्ति की कार्यकुशलता की विशिष्ट योग्यता या विशिष्ट क्षमता है। अभियोग्यता परीक्षण के आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि विद्यार्थी प्रशिक्षण द्वारा किसी शैक्षिक या व्यायवसायिक क्षेत्र में क्यो सफलता प्राप्त कर सकता है।

अभियोग्यता परीक्षणों के प्रकार -: थर्सटन एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अभियोग्यता परीक्षण 'बहुकारक' सिद्धान्तों पर आधारित हैं। अभियोग्यता परीक्षणों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

अभियोग्यता परीक्षण

I. सामान्य अभियोग्यता

I. विशिष्ट क्षेत्रों के अभियोग्यता

I. सामान्य अभियोग्यकता परीक्षण – सामान्य अभियोग्यिता परीक्षण कई योग्यतताओं का मापन करते हैं। ये परीक्षण माला के रूप होते हैं अर्थात एक ही परीक्षण में कई उपपरीक्षण होते हैं तथा प्रत्येक उपपरीक्षण किसी-न-किसी विशिष्ट अभियोग्यता का मापन करता है। इस प्रकार के परीक्षणों को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया गया है -

A. दृष्टि एवं श्रवण सम्बन्धी परीक्षण –

i. दृष्टि परीक्षण।
ii. रंग दृष्टि परीक्षण।
iii. श्रवण परीक्षण।

B. पेशीय एवं हस्तश्रम सम्बन्धी परीक्षण –

i. अंगुली की शाक्तिमोसो ओर्गोग्राफ।-
ii. टवीजर निपुणता परीक्षण।

iii. स्टेडीनेस टेस्टर।
iv. केम्बल मैच बोर्ड।

C. यान्त्रिक योग्यता सम्बन्धी परीक्षण –

i. स्टेनक्विस्ट का सामान्य यान्त्रिक योग्यता संग्रह परीक्षण।
ii. मिनिसोटा यान्त्रिक संग्रह परीक्षण।
iii. मेक्कवेरी यान्त्रिक परीक्षण।
iv. ओ रोरके यान्त्रिक परीक्षण-

D. लिपिक अभियोग्यता परीक्षण -

i. मिनिसोटा लिपिक अभियोग्यता परीक्षण।
ii. थर्स्टन का प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण।
iii. विभेद अभियोग्यता परीक्षण माला।
iv. सामान्य अभियोग्यता परीक्षण माला।
v. फ्लेनागन अभियोग्यता वर्गीकरण परीक्षण।

II. विशिष्ट अभियोग्यणता परीक्षण – इन परीक्षणों में मुख्यत : वे परीक्षण सम्मिलित हैं, जो शिक्षा एवं व्यवसाय क्षेत्रों जैसे-कला, संगीत, कानून, चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग आदि की अभियोग्यता का मापन करते हैं। इन परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति में निहित विशिष्ट योग्यताओं के सम्बन्ध, में जानकारी प्राप्ति की जा सकती है। विभिन्न क्षेत्रों में अभियोग्ययता का मापन करने वाले कुछ प्रमुख अभियोग्यंता परीक्षण इस प्रकार हैं-

A- कला अभियोग्यता परीक्षण –

i. ग्रेव डिजायन निर्णय परीक्षण।
ii. मायर कला निर्णय परीक्षण।
iii. नोवर कला योग्यता परीक्षण।
iv. होर्न कला अभियोग्यता परीक्षण।

B- शिक्षण अभियोग्यता परीक्षण -

i. प्रमोद दुबे का शिक्षण अभियोग्यता परीक्षण।
ii. पांडे शिक्षण अभियोग्यता परीक्षण।

C- संगीत अभियोग्यता परीक्षण –

i. सीशोर संगीत अभियोग्यता परीक्षा।
ii. ड्रेक संगीत अभियोग्यता परीक्षण।

iii. अलफिदर संगीत उपलब्धि परीक्षण।

D- वैज्ञानिक अभियोग्यता परीक्षण –

i. वैज्ञानिक अभियोग्यता समूह परीक्षण।
ii. वैज्ञानिक अभियोग्यता परीक्षण।
iii. देशपांडे का वैज्ञानिक अभियोग्यता परीक्षण।
iv. मोहसिन का विज्ञान अभियोग्यता परीक्षण।
v. वैंकटरमन का विज्ञान अभियोग्यता परीक्षण।

E- चिकित्सा अभियोग्यता परीक्षण –

i. एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन मेडीकल कॉलेज स्कालिस्टिक अभियोग्यता परीक्षण।
ii. मेडीकल स्कूलों के लिए स्कालिस्टिक योग्यता परीक्षण।

1.9व्यक्तित्व परीक्षण – निर्देशन तथा परामर्श का आधार ही व्यक्तित्व है। विद्यालय में निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावी बनाने हेतु, निर्देशन कार्यकर्ता को व्यक्तित्व की अवधारणा तथा मूल्यांकन की विधियों को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। व्यक्तित्व अंग्रजी भाषा के Personality शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। अंग्रजी भाषा का शब्द लैटिन भाषा के 'Persona' से बना है। जिसका अर्थ वेशभूषा या नकाब होता है। "व्यक्तित्व के अन्दर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यातत्मक संगठन है जो पर्यावरण के साथ उसका विशिष्टर समायोजन स्थापित करता है।"

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'गॉल' तथा 'स्पंरजीम' ने मुखाकृति तथा खोपड़ी के उभारों के आधार पर व्यक्ति में सैंवीस शक्तियों की एक सूची दी। जिसमें जीने की इच्छा से लेकर विनाश प्रवृत्ति तक कितनी ही प्रवृत्तियाँ सन्निहित थीं। इसी प्रकार अन्य विद्वानों के व्यक्तित्व को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया। परन्तु ये सारी विधियाँ वैज्ञानिक नहीं थीं। व्यक्तित्व मापन के लिए 1880 में गाल्टन ने प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया तथा वुडवर्थ ने 1918 में पहली अनुसूची बनाई। इसके पश्चात विभिन्न मनोवैज्ञनिकों ने व्यक्तित्व मापन की विभिन्ना विधियाँ बताई।

व्यिक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का समग्र अध्ययन करने पर इन्हें निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता
है –

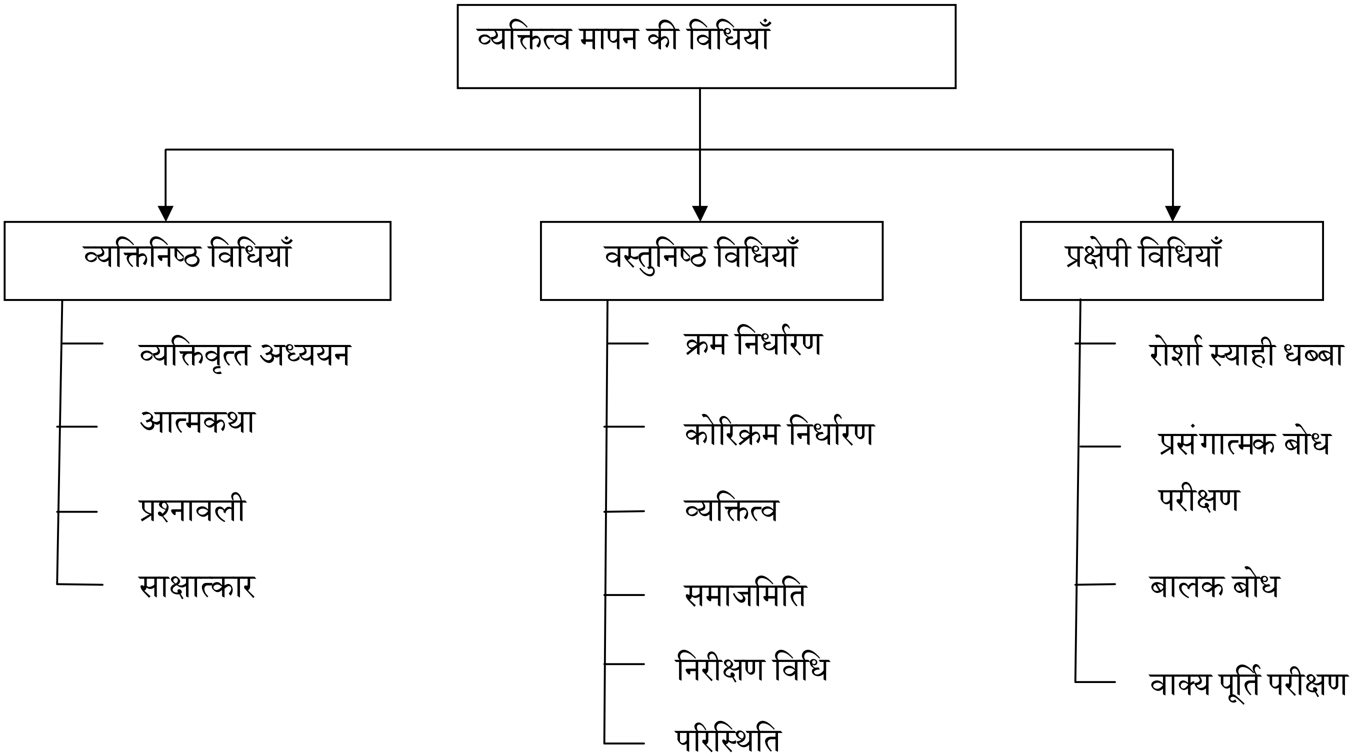

I. व्यक्तिनिष्ठ विधियाँ -: ये विधियाँ व्यक्ति के अनुभव तथा धारणा पर निर्भर होती हैं। जीवन इतिहास, प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा आत्मकथा लेखन ऐसी ही विधियाँ हैं।

II. वस्तुनिष्ठ विधियाँ -: ये विधियाँ व्यक्ति के बाहरी व्यवहार पर आधारित होती हैं। ये विधियाँ अधिक वैज्ञानिक और विश्वसनीय हो जाती हैं। प्रमुख वस्तुनिष्ठ विधियाँ निम्न प्रकार की हैं –

i. क्रम निर्धारण विधि।
ii. कोटिक्रम निर्धारण विधि।
iii. व्यक्तित्व परिसूची।
iv. समाजमिति विधि।
v. निरीक्षण विधि।
vi. परिस्थिति परीक्षण।

III. प्रक्षेपी विधियाँ -: इन विधियों द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। जबकि अन्य विधियों का सम्बन्ध व्यक्ति के चेतन व्यवहार से होता है। इन विधियों द्वारा व्यक्ति की दबी हुई इच्छाओं, व्यवहारों, रूचियों आदि की खोजकर व्यक्ति के व्यवहार का मूल्यांकन किया जाता है। प्रमुख प्रक्षेपी विधियाँ निम्नप्रकार की हैं –

i. रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण।

ii. प्रसंगात्मरक बोध परीक्षण (TAT)।

iii. बालक बोध परीक्षण (CAT)।

iv. वाक्य पूर्ति परीक्षण।

v. कहानी पूर्ति परीक्षण।

vi. ड्राइग-पेंटिग एवं मूर्तिकला।

उपर्युक्त व्यक्तित्व परीक्षणों की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करके निर्देशन में उपयोग कर लिया जाता है। इस प्रकार निर्देशनकर्ता प्रभावी निर्देशन प्रदान करने में सफल हो जाता है।

1.9.5 सचयित रिकार्ड (Cumulative Records) विद्यार्थियों को उचित निर्देशन व परामर्श देने हेतु विद्यार्थी से सम्बिन्धित सभी पक्षों की सूचनाओं का संकलन आवश्यक है। इन सूचनाओं को एक ही पत्र या फाइल में रखे जाने से विद्यार्थी के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त हो जाती है। इन्हीं पत्रों को संचयित रिकार्ड या संकलित आलेख पत्र कहते हैं। मेंहदी के अनुसार, "संचित आलेख पत्र एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें किसी व्यिक्त के बारे में पूर्ण और विकसित होते हुए चित्र के प्रस्तुतीकरण के लिए सम्बान्धित सूचनाएँ संचित रूप में रिकार्ड की जाती हैं।

संचयित आलेख पत्रों के प्रकार -: सामान्यत: संचयी आलेख पत्र तीन प्रकार के होते हैं –

संचयित आलेख पत्र

- एक पत्रक लेखा
  - एक ही पृष्ठ पर दोनों तरफ तथ्य लिखे जाते हैं।
- इनका आकार 4'' × 6" से लेकर पूर्ण पृष्ठ के आकार तक होता है। इनमें विभिन्न सूचनाओं के अनेक पत्रक रखे जाते हैं।
- संकलित परत
  - इसमें परत दर परत चार भाग होते हैं तथा अतिरिक्त सूचनाओं के लिए स्थान होता है।

निर्देशन में संचयित आलेख पत्र का महत्व -: निर्देशन में संचयित आलेख को महत्वपूर्ण उपकरण माना जाता है। इसकी सहायता से हम बालकों की विभिन्न आवश्यकताओं, योग्यताओं जो विद्यालयी कार्यक्रमों में भाग लेने पर प्रदर्शित होती हैं, उनका रिकार्ड कर लेते हैं। इन सूचनाओं के माध्यम से विद्यार्थी के विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर आवश्यक निर्देशन की दिशा का चुनाव किया जा सकता है।

इन आलेख पत्रों की सहायता से कुसमायोजित, पिछड़े प्रतिभाशाली, व्यक्तिगत विभिन्नताओं वाले बालकों की समग्र जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। जिससे हम इन बालकों को उचित निर्देशन प्रदान कर सकते हैं।

1.9.6 वास्ताविक आलेख (Annecdotal Record) :- वास्तविक आलेख को आकस्मिक अभिलेख या आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख भी कहते हैं। आकस्मिक अभिलेख किसी शिक्षक या अवलोकित किसी विद्यार्थी के व्यवहार तथा व्यक्ति का वस्तुनिष्ठ वर्णन है। यह अभिलेख नियमित अवलोकन का परिणाम है जो कि बिना तैयारी के किया जाता है अत:इसे अनौपचारिक अवलोकन की संज्ञा भी दी जाती है। स्ट्रैंग के अनुसार, "आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख नियमित अवलोकन का विशिष्ट रूप है। यह बच्चे के व्यवहार और व्यक्तित्व का निरंतर, संक्षिप्त, ठोस अवलोकन का वर्णन होता है जिसे अध्यापक ही अवलोकन और रिकार्ड करता है।"

आकस्मिक अभिलेख को तैयार करने के लिए आकस्मिक आलेख प्रपत्र प्रयुक्त किया जाता है जिसका स्वरूप निम्निलिखित है – आकस्मिक अभिलेख प्रपत्र

विद्यार्थी का नाम:-..

कक्षा:- ....

दिनांक	स्थान	समय	घटना	टीका-टिप्पणी

निरीक्षणकर्ता/अध्याखपक के हस्ताकक्षर

निर्देशन में आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख की उपयोगिता -: आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के निम्नलिखित लाभ हैं –

i. ये अभिलेख विद्यार्थियों की समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। अत: अभिलेख निर्देशन में बहुत सहायक होते हैं।
ii. इन अभिलेखों की सहायता से किसी भी विद्यार्थी के व्यक्तित्व: का सही अनुमान लगाया जा सकता है। यही अनुमान निर्देशनकर्ता के लिए सहायक होता है।
iii. इन अभिलेखों की सहायता से विद्यार्थी की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं को समझने में सहायता मिलती है जिसके आधार पर निर्देशनकर्ता को निर्देशन में सहायता मिलती है।
iv. इन अभिलेखों के माध्याम से शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी की ओर अपना ध्यान दे सकता है।
iv. ये अभिलेख संकलित तथ्यों के आधार पर उपचारात्मक सेवाओं में लाभदायक होते हैं।

1.9.7 मामला अध्ययन (Case Study) :- मामला अध्ययन को केस अध्ययन भी कहते हैं। केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं

विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था , एक समुदाय, घटना,नीति, संगठन आदि को लिया जाता है। स्पष्ट है केस अध्ययन विधि में जो केस होता है उससे तात्पर्य ऐसी घटना या प्रक्रिया से होता है जिसका एक आबद्ध सन्दर्भ (Bounded Context) होता है अर्थात केस में सम्मिलित की गई घटना या इकाई की अपनी चहारदीवारी होती है।

पी. वी. यंग ने केस अध्ययन विधि का परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''केस अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक इकाई के जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है।''

1) **केस अध्ययन विधि के प्रकार** :- व्यवहारपरक वैज्ञानिकों ने केस अध्यकयन के मुख्य दो उप प्रकार बताए हैं जो निम्नांकित हैं –अपसरित केस अध्ययन
2) **पृथक नैदानिक केस अध्ययन**: - इन दोनों का वर्णन इस प्रकार है –

1) **अपसरित केस अध्ययन** :- केस अध्य यन के इस प्रकार में शोधकर्ता एक ही साथ दो ऐसे के सेज (Cases) को लेता है जिसमें काफी समानता होते हुए भी भिन्नता होती है। उदाहरण – एकांडी जुडवॉ युग्म का अध्ययन।
2) **पृथक नैदानिक केस अध्यृयन :-** इस प्रकार के केस विश्ले षण विधि में शोधकर्ता वैयक्तिक इकाइयों का विश्लेउषण उनके विश्लेकषणात्म क समस्यायओं के आलोक मे करता है। इस ढंग के केस अध्य यन में शोधकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के बीते हुए दिनों के घटना चक्रों का विस्तृत विश्लेतषण किया जाता है और उसके आधार पर एक अंतिम निष्कष पर पहुँचा जाता है।

1) **<u>निर्देशन के क्षेत्र में मामला अध्ययन की उपयोगिता :-</u>** निर्देशन के क्षेत्र में मामला अध्ययन की उपयोगिता को निम्न प्रकार बताया जा सकता है – केस अध्ययन द्वारा अध्ययन के लिए चयन किए गए केस का गहन रूप से अध्ययन संभव है जिसके आधार पर सूचनाओं को गहराई से प्राप्त किया जा सकता है।
2) केस अध्ययन द्वारा प्रयोज्य की समस्याओं का पूरी तरह से आकलन किया जा सकता है।
3) निर्देशनकर्ता को विभिन्न प्रकार के निर्देशन में सहायता प्राप्त होती है।
4) केस अध्ययन विधि द्वारा व्यक्ति की वैयक्तिक विभिन्नताओं, आवश्यकताओं को प्रभावी तरीके से समझ कर उनका समाधान किया जाता है।
5) केस अध्ययन के द्वारा व्यक्ति के स्वाभाविक इतिहास के बारे में जानने में मदद मिलती है जिसके आधार पर व्यक्ति का उचित निर्देशन प्रदान किया जा सकता है।

1.9.8 साक्षात्कार (Interview) :- साक्षात्कार विधि निर्देशन प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। यह आत्मनिष्ठ विधि है। साक्षात्कार मूलभूत रूप में निश्चित उद्देश्य के साथ वार्तालाप है। इस विधि में साक्षात्कारकर्ता तथा सूचना प्रदाता एक-दूसरे के आमने सामने बैठकर सम्बन्ध स्थापित कर वार्तालाप

करते हैं तथा वांछित सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। साक्षात्कार को परामर्श प्रक्रिया का केन्द्र भी माना जाता है।

डेजिन ने साक्षात्कार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''साक्षात्कार आमने सामने किया गया एक संवादोचित आदान प्रदान है जहॉ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कुछ सूचनायें प्राप्त करता है।''

साक्षात्कार के सोपान :- साक्षात्कार करना एक कला है। साक्षात्कारकर्ता (निर्देशनकर्ता) इसे प्रभावी बनाने हेतु कुछ निर्धारित सोपानों का प्रयोग करता है। इसके बिना साक्षात्कार का कोई स्वरूप नहीं बनाता है और न ही वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। ये सोपान निम्नवत हैं –

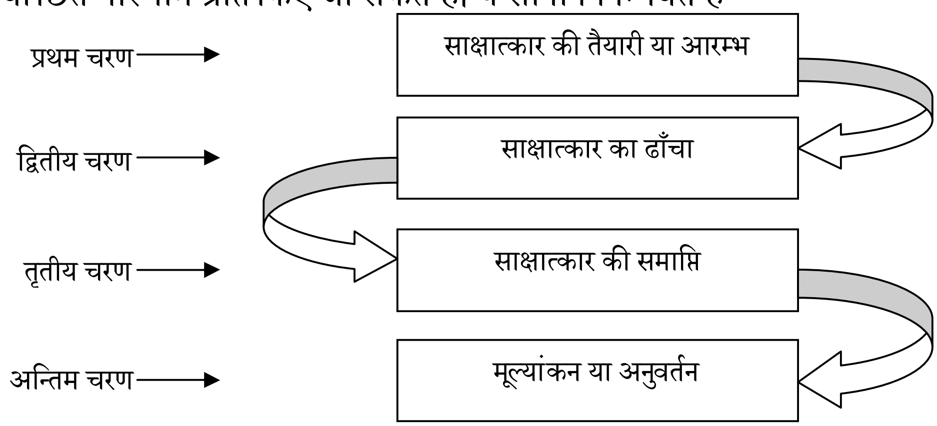

प्रथम चरण– साक्षात्कार की तैयारी या आरम्भ -:यह साक्षात्कार कार्यक्रम की प्राथमिक चरण है साक्षात्कार के इस सोपान में साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार देने वाले साथ वातावरण को साक्षात्कार के अनुकूल बनाता है।

द्वितीय चरण – साक्षात्कार का ढाँचा -:यह साक्षात्कार का महत्वपूर्ण भाग है। यह प्रार्थी की समस्या के किसी पक्ष को छूता है। इस अर्थ में यह भाग साक्षात्कार प्रक्रिया की अति संवेदनशील अवस्था है। साक्षात्कार के परिणाम इसी भाग पर निर्भर करते हैं।

तृतीय चरण – साक्षात्कार की समाप्ति -: किसी भी कार्य की उचित रूप में समाप्ति से उसका प्रभाव परिणामों पर अवश्य पड़ता है। साक्षात्कार के लिए भी एकदम समाप्त होने की घोषणा नहीं करनी चाहिए अन्यथा वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते साक्षात्कार की समाप्ति से पूर्व प्रार्थी को सन्तुष्ट होना चाहिए तथा साक्षात्कार की समाप्ति पर साक्षात्कारकर्ता, सूचना प्रदाता से सुखद वाक्यअवश्य कहे।

अन्तिम चरण – मूल्यांकन तथा अनुवर्तन:- इस चरण को पश्च साक्षात्कार भी कहते हैं। इस चरण में देखा जाता है कि साक्षात्कारकर्ता द्वारा दिये गए सुझावों का प्रार्थी ने अनुसरण किया या नहीं। साक्षात्कार की सफलता का यह सोपान संकेत होता है।

निर्देशन में साक्षात्कार की उपयोगिता -: निर्देशन, साक्षात्कार के बिना अधूरा है। निर्देशन में साक्षात्कार की निम्नलिखित उपयोगिता है –

i. इस विधि का प्रयोग विभिन्न प्रकार की समस्याओं को समझने में किया जा सकता है।
ii. इसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण रूप से समझा जा सकता है।
iii. यह विधि समस्या केन्द्रित होने के कारण अधिक महत्वपूर्ण है।
iv. साक्षात्कार द्वारा प्रार्थी के दृष्टिकोण, भावनाओं व प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जा सकता है।
v. साक्षात्कार द्वारा प्रार्थी के अतीत की घटनाओं के बारे में भी जाना जा सकता है।

1.9.9 सामाजिक तकनीक (Sociometric Method) :- समाजमितीय प्रविधि एक तरह की नामजदगी विधि (Nominating Technique) है। नामजदगी विधि से तात्पर्य एक ऐसी विधि से होता है जिसमें समूह का प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्ति को जो किसी खास कसौटी या श्रेणी में सही-सही बैठते हैं, को मनोनीत किया जाता है। सामाजिक तकनीक का प्रतिपादन **मोरेनो (Moreno, 1934)** द्वारा अपनी पुस्तक 'हू शैल सारवाइव' (Who Shall Survive?) में किया था।

करलिंगर ने समाजमिति विधि परिभाषित करते हुए कहा है, ''समाजमिति एक विस्तृत पद है जिसमें समूह में व्यक्तियों के पसंद, संचार एवं अन्त:क्रिया पैर्टन से सम्बन्धित आँकड़ों को इकट्ठा करने एवं विश्लेषण करने की कई विधियाँ सम्मिलित होती है। कोई यह कह सकता है कि समाज सामाजिक पसंद के मापन एवं उसके अध्यायन की एक विधि है। इसे समूहों के आकर्षण एवं विकर्षण को अध्ययन करने का एक साधन भी कहा गया है।

इस प्रविधि में समूह में सदस्यों का एक-दूसरे के प्रति स्वीकरण तथा अस्वीकरण के माध्यम से समूह की संरचना, सामाजिक पद तथा व्यक्ति शील गुणों का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में समाजमिति प्रविधि समूह में स्वीकारण या अस्वींकरण के सहारे में अन्त वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन करने का एक माध्यम है।

समाजमिति विधि का क्रियान्वयन -: समाजमिति द्वारा समूह की संरचना का अध्य्यन करने के लिए समूह के प्रत्येक सदस्य से किसी खास कसौटी पर अन्य सदस्यों के प्रति अपनी स्वीकरण एक, दो या दो से अधिक पसन्दों के रूप में व्यक्त करने के लिए कहा जाता है। जैसे – किसी कक्षा के छात्रों से यह पूछा जा सकता है कि आप उस छात्र का नाम दिए गए कागज के टुकड़े पर लिख कर दें जिसके साथ बैठकर आप नाश्ता करना पसन्द करते हैं या खेलना पसन्द करते हैं। इसी प्रकार निर्देशनकर्ता समस्या से संबंधित कारणों के विषय में भी उत्तरदाता से सूचनाएं प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार अध्ययनकर्ता को विशेष प्रकार के आँकड़ें मिल जाते हैं जिनके विश्लेषण से वह निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाता है।

समाजमितिक आँकड़ों का विश्लेषण -:समाजमिति से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण की तीन प्रविधियाँ हैं –

1) समाजमितीय मैट्रिक्स (Sociometric Matrix)
2) समाज आलेख-(Sociogram)
3) समाजमितिय सूचकांक(Sociometric Index)

1) समाजमितीय मैट्रिक्सा :- समाजमितीय मैट्रिक्स वह मैट्रिक्स होती है जो वर्गाकार अर्थात n x n होता है। यहॉ n से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से होता है। इस मैट्रिक्स का विशिष्ट प्रकार से विश्लेषण करके निष्कर्ष प्राप्त कर लिए जाते हैं।

2) समाज-आलेख :- समाज-आलेख वह विधि है जिसमें समूह के सदस्यों द्वारा एक-दूसरे के प्रति किए गए पसन्दों को एक आलेख पर या सादे कागज पर चित्र बनाकर दिख लाया जाता है जिसमें विभिन्न तीरों की सहायता से पसन्द-नापसन्द को स्पष्ट किया जाता है। समाज-आलेख को मात्र देखने से ही समूह के सदस्यों के अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धों का पता चल जाता है।

3)समाजमितीय सूचकांक:- समाजमिति में कुछ सूचकांक ज्ञात करके समूह के सदस्यों के अन्तर-वैयक्तिक सम्बन्धों का अन्दाज मिल जाता है। ऐसे कई तरह के सूचकांक प्रचलित हैं परन्तुउनमें से निम्नालिखित सूचकांक सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है।

$$Cs = \frac{Ec}{n-1}$$

जहाँ –Cs = व्यक्ति का पसन्द स्तर।

*E*c = कॉलम में पसन्द का योग।

H = समूह में व्यक्तियों की संख्या।

निर्देशन में समाजमिति का उपयोग -:

स्वो:मूल्यांककन(Self Evaluation)

1. बुद्धि परीक्षण से आप क्या समझते हैं। विभिन्न प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. निम्न पर टिप्पणी लिखिए – (क) उपलब्धि परीक्षण (ख) योग्यिता परीक्षण (ग) व्यक्तित्व परीक्षण
3. संचयित रिकार्ड तथा वास्तिवक रिकार्ड में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. साक्षात्कार किसे कहते हैं? साक्षात्कार आयोजन के विभिन्न चरण एवं निर्देशन में साक्षात्कार की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।
5. सामाजिक तककनीकी से क्या तात्पर्य है? निर्देशन में इसकी उपयोगिता बताइए।

इकाई 2

2.1 परिचय
2.2 व्यावसायिक निर्देशन
2.3.1 व्यावसायिक चयन
2.3.2 व्यावसायिक विकास
2.3.3 विकासात्मक कार्य, निर्धारक एवं सिद्धांत
2.3.3.1 विकासात्मक कार्य -
2.4 व्यावसायिक चयन एवं विकास के निर्धारक
2.5 व्यावसायिक चयन एवं कर्मचारी चयन
2.6 कार्य विश्लेषण, कार्य विवरण एवं कार्य विशिष्टीकरण -
2.6.1 कार्य-विश्लेषण में सूचना के स्त्रोत
2.6.2 कर्मचारी विश्लेषण
2.7 प्रमुख कर्मचारी चयन विधियां
2.8 व्यावसायिक समायोजन
2.8.1 व्यावसायिक समायोजन के सिद्धांत
2.9 व्यावसायिक निर्देशन में मनोवैज्ञानिकों की भूमिका

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप

- व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित कर सकेंगे।
- व्यवसाय के चयन की समझ विकसित कर सकेंगे।
- व्यवसाय के विकास के क्रम को समझ सकेंगे।
- व्यवसाय में कार्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.1 परिचय

अमेरिका के बोस्टन नगर में फ्रेंक पार्सन्स द्वारा वोकेशनल ब्यूरो की स्थापना के साथ 1908 में निर्देशन आंदोलन का आरम्भ हुआ था, पिछले लगभग एक शताब्दी के मध्यान्तर में निर्देशन के अन्य क्षेत्रों का विकास और विस्तार हुआ और निर्देशन शिक्षा का एक अंग बन गया। आज भी व्यावसायिक निर्देशन को निर्देशन के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक महत्व प्राप्त है। पिछले कुछ दशकों में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर घटित आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी परिवर्तनों और नगरीकरण एवं बढती हुई जनसंख्या के संदर्भ में व्यावसायिक निर्देशन की प्रासंगिकता और भी बढ गई है।

2.2 व्यावसायिक निर्देशन

नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोसियेशन (अमेरिका) द्वारा दी की गई परिभाषा (1937) के अनुसार "व्यावसायिक निर्देशन एक व्यवसाय को चुनने , इसके लिए तैयारी करने, प्रविष्ट होने तथा इसमें प्रगति करने हेतु एक व्यक्ति को दी जाने वाली सहायता की प्रक्रिया है।"

अंतरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (1949) के अनुसार, व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति की विशेषताओं और व्यावसायिक अवसरों के साथ उसके संबंध को समुचित रूपमें ध्यान रखते हुए व्यावसायिक चयन व प्रगति संबंधी व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने हेतु दी जाने वाली सहायता है।

नेशनल वोकेशनल गाइडेन्स एसोसियेशन का मानना है कि व्यावसायिक निर्देशन का मूल कार्य व्यक्तियों को कैरिअर बनाने, भविष्य की योजना बनाने, व्यावसायिक क्षेत्र का चुनाव करने तथा संतोषजनक व्यावसायिक समायोजन स्थापित करने के लिए सहायता देना है।

पार्सन्स द्वारा स्थापित ब्यूरो की गतिविधियों में युवकों को (1) व्यवसाय का चुनाव करने तथा (2) चुने गये व्यवसाय के लिए तैयारी करने में सहायता देना सम्मिलित था। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए पार्सन्स ने (1) व्यक्ति अभिक्षमताओं, क्षमताओं, रूचियों, आकांक्षाओं और उसके कारणों के समझनें (2) विभिन्न व्यावसयिक दिशाओं की जरूरतों, सफलता की दशाओं, गुण और दोष, क्षतिपूर्ति, अवसर तथा संभावनाओं को जानने तथा (3) उपर्युक्त दोनों के मध्य तर्क के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करने के महत्व पर बल दिया।

जैसा कि उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है व्यावसायिक निर्देशन पार्सन्स के द्वारा निर्धारित सीमाओं से बाहर फैला हुआ है। आरम्भ में यह माना गया कि व्यावसायिक निर्देशन का लक्ष्य व्यक्ति की विशेषताओं और व्यावसायिक जगत अथवा व्यवसाय विशेष की माँगों जरूरतों के मध्य मेल मैचिग बैठानें तथा उसके आधार पर व्यक्ति के लिए उपयुक्त व्यवसाय का चुनाव कर लेने में व्यक्ति की सहायता करना है। बाद में उसके लक्ष्य के अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा कर लेने में व्यक्ति की सहायता करना है। बाद में उसके लक्ष्य के बन्तर्गत व्यकित द्वारा चयनित व्यवसाय क्षेत्र में तैयारी करने में व्यक्ति की सहायता के उददेश्य को भी सम्मिलित कर लिया गया। आगे चलकर व्यावसायिक चयन तथा व्यावसायिक विकास के अतिरिक्त व्यावसायिक चयन एवं व्यावसायिक समायोजन को भी व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। व्यावसायिक निर्देशन के अर्थ और गतिविधि में यह विस्तार व्यावसायिक निर्देशन के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुआ है। आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि में निर्देशन एक सतत प्रक्रिया है जिसका उददेश्य व्यक्ति का विकास है, अतः व्यावसायिक निर्देशन का लक्ष्य न तो व्यवसाय के चयन के बिंदु पर समाप्त हो सकता है और न ही व्यवसाय के लिए तैयारी के बिन्दु पर। व्यवसाय का चयन और तैयारी व्यवसाय क्षेत्र में प्रवेश को पूर्णतः सुनिश्चित नहीं कर देता है। अनेक कारक जो कि व्यक्ति के नियन्त्रण में नहीं होते है वे भी व्यावसायिक चयन और व्यवसाय अपनाने के व्यक्ति के नियन्त्रण में नहीं होते हैं वे भी व्यावसायिक चयन और व्यवसाय अपनाने के पश्चात व्यक्ति के समायोजन और प्रगति को प्रभावित करते है। र्निदेशन का लक्ष्य और उददेश्य जीवन के सभी क्षेत्रों तथा सभी अवस्थाओं में सहयोग देना होता है अतः व्यक्ति को व्यवसाय क्षेत्र में अवसर प्राप्त करने, व्यवसाय क्षेत्र में

सफलता और संतुष्टि प्राप्त करने और प्रगति करने हेतु सहयोग देना भी व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत ही सम्मिलित है। व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यक्ति का व्यावसायिक विकास करना होता है। व्यावसायिक विकास के अनेक चरण होते है। व्यावसायिक प्रगति का लक्ष्य भी व्यावसायिक विकास का भाग है। इसलिए व्यवसायिक निर्देशन का कार्य व्यवसाय क्षेत्र में प्रवेश हो चुकने के बाद भी चलता रहता है।

व्यावसायिक निर्देशनः चयन, विकास, चयन एवं समायोजन

2.3.1 व्यावसायिक चयन

व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं, अनेक विकल्पों में से किसी एक या कुछ एक का अपने लिए उपयुक्तता तथा भविष्य सम्बन्धी सम्भावनाओं के आधार पर चयन करना होता है। व्यावसायिक चयन व्यक्ति के जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय होता है। मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में व्यावसायिकरण कोई बिन्दु नहीं है, एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो कि व्यक्ति के समूचे विगत विकासात्मक इतिहास और अनुभवों से प्रभावित होती है तथा अनुत्क्रमणीय होती है। एक बार लिए गये निर्णय के प्रभाव को भविष्य के दूसरे प्रकार के निर्णयों या अन्य किसी प्रकार से पूर्णतः लुप्त नहीं किया जा सकता है।

व्यावसायिक चयन एक विकासात्मक प्रक्रिया है जो कि बहुधा लगभग दस वर्षों के अन्तराल में सम्पन्न होती है। उत्तर बाल्यावस्था में किसी समय आरम्भ होकर आरम्भिक युवावस्था तक पहुँचकर व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया सम्पन्न होती है। इस प्रकार किशोरावस्था की पूरी अवधि व्यावसायिक चयन की दृष्टि से अत्यन्त महत्पूर्ण होती है। व्यावसायिक चयन की विभिन्न सैद्धान्तिक व्याख्याओं में से एक रोचक व्याख्या गिन्जबर्ग एवं सहयोगियों (1951) द्वारा प्रस्तुत की गई है जिसके अनुसार व्यावसायिकरण प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ होती हैं-

प्रथम अवस्था, कल्पनापूर्ण चयन अवस्था लगभग 10 वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवधि में बच्चे का व्यावसायिक चयन सामाजिक- सांस्कृतिक वरियताओं का प्रतिनिधित्व करता है। बच्चा अपनी क्षमताओं और विशेषताओं को ध्यान में रखे बिना ही अपने लिए व्यवसाय का चयन करता है अथवा यह कहे कि व्यवसाय की कल्पना करता है।

दूसरी अवस्था, अंतरिम चयन अवस्था जो कि 11 वर्ष से 17 वर्ष तक की अवधि होती है जिसमें व्यक्ति भविष्य में सन्तुष्टि की प्रायिकता की दृष्टि से किसी व्यवसाय के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन करता है।

तीसरी अवस्था, वास्तविकतापूर्ण चयन अवधि उत्तर बाल्यावस्था से आरम्भ होकर उस समय तक फैली होती है जबतक कि व्यक्ति अंततः किसी व्यवसाय में स्थापित नहीं हो जाता है। इस अवस्था में व्यावसायिक चयन में पारदर्शिता आ जाती है, व्यक्ति कार्य सम्बन्धी निजी अनुभवों या प्रच्छन्न अनुभवों के आधार पर व्यावसायिक वरीयता को परिवेश तथा कार्य जगत के साथ जोड़ने का कार्य करता है।

2.3.2 व्यावसायिक विकास

व्यावसायिक निर्देशन के आरम्भिक उपागम में व्याक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं, तथा व्यवसाय की मांगों (अर्थात व्यवसाय विशेष के लिए आवश्यक व्यक्ति सम्बंधी क्षमताओं और विशेषताओ) के बीच सम्मेलन स्थापित करने, व्यवसाय अपनाने तथा समायोजन होने के लक्ष्य की दिशा में सहायता देने के कार्य को व्यावसायिक निर्देशन माना जाता था किन्तु व्यावसायिक निर्देशन का आधुनिक स्वरूप इस उपागम की तुलना में अधिक व्यापक और जटिल है।

डी0 ई0 सुपर (1957) व्यावसायिक निर्देशन को, ''एक व्यक्ति को स्वंय का तथा कार्य जगत में अपनी भूमिका का उपयुक्त एवं समन्वित चित्र विकसित करने तथा स्वीकार करने, इस समप्रत्यय को वास्तविकता के संदर्भ में परखने एवं अपनी सन्तुष्टि और समाज के हित के अनुरूप वास्तविकता में रूपान्तरित करने के लिए सहयोग देने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं।"

इस परिभाषा में दो अभिग्रह सम्मिलित है। प्रथम, व्यावसायिक विकास व्यक्ति के समग्र विकास का अन्तर्निहित अंग है। द्वितीय, यह कि व्यावसायिक विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में योगदान करता है। "इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन, व्यक्ति के विकास में सहयोग देने की एक प्रक्रिया, वस्तुतः उसके व्यक्तित्व के विकास में, या यह कहा जा सकता है, उसके आत्म- सम्प्रयय प्रणाली के विकास में सहयोग देने की प्रक्रिया है।"

मागरिट ई0 बेन्नेट (1963) ने व्यावसायिक विकास को वैयक्तिक एवं सामाजिक कारकों, आत्म-सम्प्रत्यय और वास्ताविकता के मध्य समझौते (मध्यमार्ग)के रूप में परिभाषित किया है। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को आवश्यक समझौते करने के लिए दी जाने वाली ऐसी सहायता है जिसका उद्देश्य समझौता करते समय चिन्ता और तनाव उत्पन्न किये बिना व्यक्ति को व्यावसायिक आत्म सम्प्रत्यय के अधिकतम विकास हेतु सहायता देना होता है।

इस प्रकार व्यावसायिक विकास व्यावसायिक निर्देशन का एक ऐसा लक्ष्य है जिसका अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति का समग्र विकास करना होता है। मानव विकास के कार्य लक्ष्यों की भाँति ही व्यावसायिक विकास के भी लक्ष्य होते है जो व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया और उसे प्रभावित करने वाले कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं। स्पष्ट है कि व्यावसायिक विकास, व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में आधुनिक सम्प्रत्यय है। आरम्भ में व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य व्यावसायिक चयन हेतु सहयोग देना था। बाद में निर्देशन के उद्देश्यों में व्यक्तिगत कारकों जैसे उपचार और बचाव पर बल दिया जाने लगा। लेकिन बाद में यह विचार प्रकट किया गया कि यदि शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का अधिकतम विकास करना है तो निर्देशन एवं व्यावसायिक निर्देशन का उद्देश्य नैदानिक उपचारात्मक बचाव उद्देश्यों तक सीमित नही किया जा सकता। अतः निर्देशन को एक विकासात्मक सेवा के रूप में देखा जाना चाहिए।

व्यावसायिक निर्देशन के प्रति विकासात्मक दृष्टिकोण का व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम की दृष्टि से प्रतिफल या निहितार्थ यह है कि व्यावसायिक विकास को जीवन के सतत पर फैला हुआ देखा जाता है जिसकी अनेक अवस्थाएं और लक्ष्य होते हैं लक्ष्यों की पूर्ति को प्रभावित करने वाले अनेक कारक स्वीकार किए जाते है। अर्थात व्यावसायिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है।इस दृष्टि से व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया व्यावसायिक विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। व्यवसाय के लिए

तैयारी तथा व्यवसाय में सम्मिलित होने के पश्चात व्यक्ति की व्यावसायिक प्रगति भी व्यावसायिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के विशिष्ट अंग है।

2.3.3 विकासात्मक कार्य, निर्धारक एवं सिद्धांत

व्यावसायिक विकास व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में आधुनिक उपागम है जो कि समेलन उपागम की तुलना में अधिक व्यापक लक्ष्यों की सिद्धि पर बल देता है। समेलन उपागम व्यक्ति तथा व्यवसाय के मध्य समेलन स्थापित करने पर बल देता है लेकिन व्यावसायिक विकास उपागम व्यक्ति के समग्र विकास पर बल देता है। व्यावसायिक विकास का अभीष्ट उद्देश्य व्यक्ति के व्यावसायिक आत्म सप्रत्यय का अधिकतम विकास संभव बनाना है। यह उपागम व्यक्ति के लिए उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर अनेंक लक्ष्य निर्धारित करता है जिसकी प्राप्ति व्यक्ति द्वारा की जानी चाहिए। इस विकास की सफलता के लिए अनके निर्धारक होते हैं।

2.3.3.1 विकासात्मक कार्य -

विकासात्मक कार्य का अर्थ है विकास की प्रत्येक अवस्था में उचित विकास का पूरा होना। राबर्ट हेविगर्स्ट ने विकास की सभी अवस्थाओं के लिए व्यावसायिक विकास के लक्ष्यों का निर्धारण किया है जो उनके विकासात्मक कार्यों संबंधी विचारों का विस्तार है। व्यक्ति द्वारा विकासात्मक कार्यों की प्राप्ति से उसे सुख का अनुभव होता है जबकि विफलता के कारण व्यक्ति को दुख का अनुभव होता है, समाज तिरस्कृत करता है तथा अगली अवस्था में विकास के निर्धारक लक्ष्यों की प्राप्ति में कठिनाई आती है। हेविगर्स्ट के द्वारा वर्णित लक्ष्यों का वर्णन करते हुए जोन्स 1970, एवं नायर 1972, व्यावसायिक विकास की अनेक अवस्थाओं का विभाजन करते हैं।

प्रथम अवस्था - तादात्मीकरण की होती है जो पांच से दस वर्ष की आयु तक फैली हुई है। इस अवस्था में बालक परिवार के किसी वयस्क के कार्यों के साथ तादात्मय स्थापित करता है। प्रायः यह व्यक्ति पिता होता है। वर्तमान युग की बदली हुई परिस्थितियों में जबकि माताओं ने विश्वव्यापी स्तर पर रोजगार अपना लिया है, मां के साथ भी तादात्म्य होना संभव है। हेविगर्स्ट का मानना है कि जिन परिवारों में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता है वहां बच्चे वंचना अलाभकारी दशा में होते है अतः उनका व्यावसायिक विकास स्वस्थ एवं सामान्य नहीं हो पाता है। इस अवस्था में बालक बातें करना, भौतिक और सामाजिक सत्य का संप्रत्ययन करना, गलत और सही में भेद करना सीखता है तथा अन्तरात्मा का विकास करता है। व्यावसायिक विकास की दृष्टि से यह समझ विकसित होती है जब बड़ा होगा तब वह भी यह कार्य करेगा, अर्थोपार्जन करेगा एवं परिवार की खर्चों की जिम्मेदारी का निर्वाह करेगा।

द्वितीय अवस्था दस से पन्द्रह वर्ष की आयु की होती है। इस अवधि में वह उद्यमशीलता के लिए मूलभूत प्रतिभा अर्जित करता है। जिम्मेदारी की भावना का अधिगम आरम्भ होता है। तथा यह बोध विकसित होने लगता है क कार्य करने का अर्थ क्या होता है। अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में बच्चें अध्ययन के साथ-साथ अल्पकालिक रोजगार करने लग जाते है। ऐसी दशा में बालक खेलने के स्थान पर कार्य को महत्व देना सीखने लगता है।

तृतीय व्यावसायिक अवस्था पंद्रह वर्ष से पच्चीस वर्ष तक की होती है। इस अवधि में किशोर नवयुवक एक रोजगार क्षेत्र का चयन कर सके इसके लिए तैयारी करने लगता है। व्यक्ति प्रायः इस अवधि के अन्त तक किसी व्यवसाय में प्रविष्ट हो जाता है। व्यक्ति स्वयं को भावी कर्मचारी के स्थान पर वास्तविक कर्मचारी के रूप में देखने लगता है। यदि कोई रोजगार नही मिल पाता है तब अनेक विसंगतियों की उत्पत्ति होती है।

चतुर्थ व्यावसायिक विकास अवधि पच्चीस वर्ष की आयु से चालीस वर्ष की अवस्था तक चलती है। इस अवधि में प्रायः व्यक्ति वस्तुतः उत्पादक होता है व्यक्ति अपने कार्यक्षेत्र में प्रोन्नतियां प्राप्त करता है तथा अपनी कार्यकुशलता की दृष्टि से उत्कृष्ट बिन्दु पर होता है।

पांचवी अवस्था-लगभग चालीस वर्ष से आरम्भ करके साठ सत्तर वर्ष की आयु तक (अधिकतम आयु अनके भौगोलिक,जैविक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है) को **पांचवी अवस्था** - यथास्थितिवादी काल कहा जा सकता है। व्यक्ति निजी विकास के लिए कम चिंतित होता है व्यक्ति का ध्यान समाज के लिए अपना योगदान सुनिश्चित करने पर केन्द्रित होने लगता है। इस अवधि में व्यक्ति अनेक प्रकार के सामाजिक सांस्कृतिक संगठनों और कार्यक्रमों में भागीदारी करता है। सार्व भौमिक रूप में इस आयुवर्ग के लोग अपनी अगली पीढ़ी के भविष्य के बारे में चिन्तित होते हैं, अपने बच्चों के कैरियर तथा उनके लिए अच्छे परिवेश की रचना के प्रति योगदान करना चाहते हैं।

अंततः व्यक्ति व्यावसायिक दृष्टि से सीमित जीवन को जीने का प्रयत्न करता है, अपनी उत्पादकता के संदर्भ में गहन चिंतन करता है। अपने योगदान का गहन मूल्यांकन करता है।

हेविगर्स्ट के विचारें में व्यावसायिक विकास के संदर्भ में रेखांकित किए जाने योग्य अनेक तत्वहैं-

1. व्यावसायिक विकास में तादात्मीकरण की भूमिका महत्वपूर्ण होती है तादात्मय का अभाव क्षतिकारक है।
2. व्यावसायिक विकास में परिवार और विद्यालय दोनो की भूमिका महत्वपूर्ण है।
3. अध्यापक और परामर्शदाता व्यावसायिक चयन के विकास में सहायक होने के अतिरिक्त उद्यमिता, जिम्मेदारी तथा अन्य ऐसे महत्वपूर्ण गुणों के विकास में सहायक हो सकते है जो किसी भी कार्यक्षेत्र में सहायक सिद्ध होंगे।
4. विकास की किसी अवस्था में वांछित विकास कार्य की निपुणता अर्जित करनेमें सहयोग दिया जाना चाहिए क्योंकि एक अवस्था से संबंधित विकास का लक्ष्य पूरा न होने पर अगली अवस्था से संबंधित विकास में कठिनाई आती है, तथा
5. सामाजिक आर्थिक दृष्टि से पिछड़े परिवारों में जन्म लेने वाले, पिता के बिना बड़े होने वाले या अन्य दृष्टियों से अलाभकारी दशा में विकसित होने वाले बच्चों के लिए व्यावसायिक विकास का लक्ष्य पूरा किए जाने हेतु विशेष प्रयत्न वांछित है।

डोनाल्ड ई. सुपर 1957 - ने भी व्यावसायिक विकास की पांच अवस्थाओं का वर्णन किया है।

1. वृद्धि अवस्था - 14 वर्ष की अवस्था तक
2. अन्वेषणात्मक अवस्था - 15 से 24 वर्ष तक
3. स्थापना अवस्था - 25 से 44 वर्ष तक

4. अनुरक्षण अवस्था - 45 से 64 वर्ष तक

5. हास अवस्था - 65 वर्ष के पशचात

सुपर ने अपनी अगली पुस्तकसेल्फ कांसेप्ट थ्योरी 1963 में अन्वेंषण और अनुरक्षण अवस्था को पांच उपअवस्थाओं - अंतरिम, संक्रमण,अन्वेषणात्मक जांच परख, स्थापन जांच परख, और स्थायित्व के रूप में विभाजित किया गया। सुपर 1963 के अनुसार व्यावसायिक विकासात्मक कार्य में 1. व्यावसायिक वरीयता का क्रिस्टलीकरण तथा 2. वरीयता का विशिष्टीकरण 3. वरीयता का क्रियान्वयन, 4. व्यवसाय में स्थापित होना, तथा 5. व्यवसाय में आगे बढ़ना होता है।

व्यावसायिक वरीयताओं का क्रिस्टलीकरण(रचना एवं पारदर्शिता/ स्पष्टता) आरम्भिक किशोरावस्था(अंतिम वरीयता अवस्था) की अवधि में प्रारम्भ हो जाता है। इस अवधि में व्यक्ति कार्य क्षेत्रों और स्तरों के बारे में तथा इस संदर्भ में शिक्षा और प्रशिक्षण के बारे में सोचने लगता है। इस अवस्था में वरीयता अत्यन्त सामान्यीकृत तथा धुधली होती है तथा उसमें स्पष्टीकरण उत्पन्न करने की आवश्यकता का अनुभव होता है। आदतों की दृष्टि से व्यक्ति सूचनाओं की खोज में रहता है।

उत्तर किशोरावस्था में सामान्यीकृत वरीयताओं के स्थान पर विशिष्ट चयन की उत्पत्ति होती है। व्यक्ति की अपनी विशिष्ट वरीयता में रूचि बढ़ जाती है। क्रियान्वयन आरम्भिक युवावस्था का विकासात्मक कार्य होता है। व्यवसाय क्षेत्र में प्रविष्ट होने को पश्चात वह अपने व्यावसायिक आत्म संप्रत्यय को कार्यान्वित करने लगता है ऐसा युवावस्था में होता है। तत्पश्चात वयक्ति व्यवसाय में स्थापित होकर प्रगति करने का प्रयत्न करता है।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

- व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित कीजिए।
- किसी व्यवसाय के चयन के चरण की व्याख्या कीजिए।
- व्यावसायिक विकास उपागम की व्याख्या कीजिए

2.4 व्यावसायिक चयन एवं विकास के निर्धारक

व्यक्ति के समस्त व्यवहार और विचार, रूचियां और अभिवृत्तियां तथा वरीयताएं उसके मनोदैहिक प्रक्रमों के व्यक्तित्व रूपी गत्यात्मक संगठन द्वारा निर्धारित होते हैं। व्यक्तित्व का स्वंय का निर्धारण अनेक कारकों द्वारा होता है। व्यक्तित्व आनुवांशिकता और पर्यावरण, परिपक्वता और अधिगम की अन्तक्रिया का परिणाम है। इसके निर्धारण में गर्भधारण के समय से ही अनेक कारकों की भूमिका प्रकट होने लगती है। व्यावसायिक चयन और विकास की प्रक्रिया - जिसमें व्यावसायिक आत्म संप्रत्यय का विकास भी सम्मिलित है, व्यक्तित्व से पृथक नहीं किया जा सकता है। प्रायः ऐसे समस्त कारक जिनकी व्यक्तित्व के विकास में भूमिका स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाती है। व्यावसायिक चयन और व्यावसायिक विकास को भी प्रभावित करते हैं। इन निर्धारकों के बारे में एक बात और यह महत्वपूर्ण है कि निर्धारक कारक व्यक्तित्व, व्यावसायिक चयन एवं व्यावसायिक विकास को प्रभावित नहीं करते हैं,अपितु एक निर्धारक

या कारक का अनेक अन्य निर्धारकों के स्वरूप पर भी प्रभाव पड़ता है। इस पूस्तक की सीमाओं में ऐसे कारकों की विस्तृत व्याख्या कठिन है। यहां पर उन महत्वपूर्ण निर्धारकों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिनकी व्यावसायिक चयन और विकास में भूमिका है। सुविधा की दृष्टि से ऐसे समस्त कारकों को विभिन्न वर्गो के अंतर्गत श्रेणीबद्ध किया गया है। निर्धारकों की श्रेणियां निम्नवत हैं-

1. जैविक कारक - लिंग, लंबाई, शारीरिक छवि आदि,

2. वैयक्तिक विकास - बुद्धि, अभिक्षमता, रूचियां, व्यक्तित्व, अन्य क्षमताएं

3. पारिवारिक कारक- परिवार संबंधी भौतिक, परिवेशीय, धार्मिक, सामाजिक, मूल्य, स्वास्थ्य, आर्थिक, शैक्षिक, सांवेगिक, एवं अन्य कारक

4. विद्यालयी कारक - विद्यालय के अंदर का परिवेश, अध्यापक,मूल्य, परम्परा, परामर्शदाता एवं अन्य का प्रभाव

5. सामाजिक सांस्कृतिक कारक - स्वीकार्यता, वंचना, पूर्वाग्रह, सामाजिक स्थिति, गतिशीलता, पेशागत परम्परा आदि

6. राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कारक - आर्थिक दशा, नीतियां, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, समाजवाद, पूंजीवाद, बेरोजगारी आंतकवाद, पलायन आदि।

1 जैविक कारक - व्यक्ति किस व्यवसाय का चयन करेगा, किस व्यवसाय को अपनाएगा, और कहां स्थापित होकर प्रगति कर पाएगा यह उसके लिंग, शारीरिक आर्कषण, और लंबाई, सामान्य स्वास्थ्य जैसे कारको से प्रभावित होता है। कुछ व्यवसाय पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक आर्कषित करते है। शारिरिक क्षमता पर ध्यान देने वाले व्यवसायों में स्वास्थ्य और लम्बाई का महत्व होता है। जनसंपर्क और स्वागत क्षेत्र के व्यवसाय में शारिरिक आकर्षण का महत्व देखा जाता है। व्यक्ति अपनी जैविक रचना संबंधी आत्म संप्रत्यय जैसा होगा तदनुरूप व्यक्ति का व्यावसायिक चयन तथा व्यावसायिक विकास हेतु किया गया प्रयत्न होगा।

2. वैयक्तिक कारक - व्यक्तियों की बुद्धि, अभिक्षमता, रूचियां, व्यक्तित्व विशेषताएं, शारिरिक एवं अन्य अनेक क्षमताएं एक दूसरे से भिन्न होती हैं, व्यक्ति को अपनी क्षमताओं और विशेषताओं के बारें में जैसा बोध प्राप्त होगा वैसा ही वह अपने क्षमताओं और विशेषताओं के बारें में आत्म संप्रत्यय पर 1 क्षमताओं एवं विशेषताओं के वस्तुनिष्ठ रूप से, 2 सामाजिक संबंधो के समय अन्य व्यक्तियों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रिया का प्रभाव पड़ता है। अन्य व्यक्तियों के माता पिता, अध्यापक, मित्रों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रियाएं, जो कि व्यक्ति के लिए आत्म संप्रत्यय के निर्माण में सूचना की भूमिका का निर्वाह करती है। क्षमताओं और विशेषताओं के वस्तुनिष्ठ और प्रत्यक्षण करने वालों क व्यक्तिनिष्ठ दोनो ही रूपों से प्रभावित होते है।

3. पारिवारिक कारक - व्यक्ति के समग्र विकास में परिवार से संबंधित अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। परिवार में पालन पोषण, सुरक्षा, स्नेह, तथा प्रशिक्षण ही नही प्राप्त होता है। अपितु परिवार बच्चों के लिए बाहय जगत से संपर्क का माध्यम भी होता है। आरम्भिक आयु अवस्था में परिवार भौतिक , सामाजिक सांस्कृतिक निर्धारकों का वाहक होता है। समस्त बाहरी निर्धारक परिवार के सदस्यों के माध्यम से अपना प्रभाव स्थापित करते है।क्योंकि बच्चों का बाह्य जगत के साथ सीधा संपर्क नही होता है। जब

बच्चे स्वंय घर से बाहर की दुनिया के साथ संपर्क में आते है। और उस समय भी परिवार की भूमिका बच्चों को प्राप्त होने वाले अनुभवों के लिए व्याख्याता की होती है। परिवार की विशेषताएं पारिवारिक प्रभाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण होती है। परिवार के जिन कारकों का व्यावसायिक चयन एवं विकास में महत्व समझा जाता है उनमें परिवार के अन्दर की भौतिक दशाएं, अधिवास का भौगोलिक स्थल, घर में रहने वालों की संख्या का निश्चित महत्व पाया जाता है। निवास स्थान यह निश्चित करता है कि व्यक्ति किस प्रकार के कार्य के लिए अपने घर आ जा सकता है। परिवार में में सदस्य संख्या शिक्षण और अधिगम पर ध्यान केन्द्रित कर पाने की क्षमता को प्रभावित करती है। परिवार में मुख्य जीविकोपार्जन का स्वास्थ्य और स्वास्थ की सामान्य दशा अनेक प्रकार से व्यावसायिक चयन और विकास के उद्देश्यों को बच्चों के लिए परिभाषित करती है। परिवार के अनेक सदस्यों के स्वास्थ्य का अच्छा नही होना व्यावसायिक चयन और तैयारी को प्रतिकुल रूप में प्रभावित करता है।

परिवार की सामाजिक आर्थिक दशा, समाज में संस्थिति, एक स्थान से दूसरे स्थान तक गतिशीलता, परिवार में सदस्यों की पेशागत श्रेष्ठता का व्यावसायिक चयन और विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। ऐसी सभी दृष्टिओं से यदि परिवार की दशा अच्छी होती है तो बच्चों की व्यावसायिक आकांक्षाएं उच्च स्तरीय होती है। उच्च स्तरीय परिवार में बच्चों पर उच्च स्तरीय व्यवसाय के चयन हेतु पारिवारिक एवं मित्र परिवारों के स्तर पर दबाव डाला जाता है।

परिवार अन्य सूचनाओं के अतिरिक्त व्यवसाय संबंधी सूचनाओं का भी वाहक होता है व्यक्ति को उसकी अपनी क्षमताओं और विशेषताओं के बारे में सूचना प्रदान करने के अतिरिक्त व्यावसायिक जगत के बारे में अनेक प्रकार की ऐसी सूचनाएं उपलब्ध कराने का कार्य करता है। जिनका व्यावसायिक लक्ष्यों के चयन की दृष्टि से महत्व होता है। उपलब्ध करायी जाने वाली सूचनाओं का स्वरूप भी परिवार की सामाजिक स्थिति तथा पेशागत स्थिति से प्रभावित होता है।

परिवार सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का माध्यम भी है। धर्म तथा जाति अनेक परिवारों में वर्तमान समय के व्यवसाय को प्रभावित करते हैं। धर्म और जाति अनेक प्रकार के व्यवसायों का वरण प्रतिबंधित करते है पारम्परिक शैली के परिवार इन प्रतिबंधों से हटकर कुछ नया नही कर पाते है। कुछ जातियों में कुछ व्यासायों के लिए विशेष आर्कषण होता है।

परिवार के द्वारा कार्य संबंधी सामान्यीकृत अभिवृत्तियां तथा विशिष्ट व्यवसायों के बारे में मूल्यों और अभिवृत्तियों का निर्माण होता है। परिश्रम, लगन सफेदपोशी, जैसी अभिवृत्तियो के विकास में परिवार की विशेष भूमिका होती है। आलपोर्ट वर्नन द्वारा वर्णित 6 प्रकार के मूल्यों के विकास में परिवार की विशेष भूमिका होती है तथा उक्त मूल्य व्यावसायिक चयन और विकास को प्रभावित करते है।। इस प्रकार उच्च राजनीति मूल्य वाले लोग राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय हो जाते है और उसे एक व्यवसाय के भांति अपना लेते हैं।

परिवार की सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका तादात्मीकरण के उपयुक्त संदर्भ उपलब्ध कराना, तथा भूमिका अधिगम के लिए उपयुक्त प्रतिरूप उपलब्ध कराना है। जब घर में उपयुक्त मॉडल उपलब्ध नही होता है तब किसी बाहरी व्यवसायरत या पेशारत व्यक्ति को माडल के रूप में चुनना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में प्रायः भूमिका द्वन्द का सामना करना पड़ता है।

4 विद्यालयी कारक - परिवार के बाद विद्यालय की भूमिका को सभी क्षेत्रों में विकास के लिए स्वीकार किया जाता है। विद्यालय मात्र शिक्षा का केन्द्र नहीं है, विद्यालय बच्चों को उद्योग जगत के संपर्क में लाता है। व्यावसाय जगत के लोगों को विद्यालय में आमंत्रित करता है तथा बच्चों को कार्यस्थलों तक ले जाता है। इस प्रकार कार्य संबंधी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभव उपलब्ध कराकर विद्यालय अपने विद्यार्थियों को व्यावसायिक चयन एवं व्यावसायिक विकास में सहयोग देते हैं।

अच्छे विद्यालयों की अपनी परम्पराएं और मूल्य होते हैं तथा उनका एक सुनहरा इतिहास होता है। परिणामस्वरूप किसी विद्यालय या संस्थान में अध्ययनरत विद्यार्थियों में कुछ विशेष प्रकार के कार्यक्षेत्रों के प्रति गहरा लगाव देखा जा सकता है। कुछ जाने माने संस्थानों के विद्यार्थियों का आत्म संप्रत्यय वहां प्रवेश प्राप्त होते ही एक विशिष्ट रूप धारण कर लेता है। विद्यार्थी अपने आप को अधिकारी/वैज्ञानिक आदि के रूप में देखने लगता है।

विद्यालयों में निर्देशन कार्यक्रमों के संचालन द्वारा प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होता है। विद्यालय व्यावसायिक चयन के अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से व्यावसायिक तैयारी और विकास को भी प्रभावित करता है।

5 सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक- समाज और संस्कृति अपनी संस्थाओं और व्यवस्थाओं तथा उनके प्रतिफलों के माध्यम से हमारे व्यक्तित्व, वरियताओं एवं विकासात्मक लक्ष्यों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक समूह के प्रभावों की मात्रा का निर्धारण वयक्ति की सामाजिक स्वीकृति द्वारा दो आधार पर होता है - समूह व्यक्ति को कितना स्वीकार करता है, तथा समूह का व्यक्ति के लिए कितना महत्व है। सामाजिक स्वीकृति का व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सामाजिक संस्कृति के अभाव में व्यक्ति असुरक्षित और चिन्तित अनुभव करता है तथा असमायोजन विकसित होता है। सामाजिक तिरस्कार के परिणामस्वरूप उपलब्धि की कमी , सामाजिक अनुरूपता का अभाव तथा दूसरों के लिए स्नेह भाव की कमी देखी जाती है।

समाजिक वंचना के फलस्वरूप व्यक्ति के सामाजिक संपर्क के अवसर कम हो जाते हैं। सामाजिक वंचना भौगोलिक एकान्त, पारिवारिक प्रतिबंध या सामाजिक बहिष्कार किसी भी कारण से घटित हो सकती है जिसके कारण व्यक्ति का आत्म समप्रत्यय प्रभावित होता है तथा व्यावसायिक विकास पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

समाजिक पूर्वाग्रहों तथा विभेदन का प्रभाव इसे व्यवहार में अपनाने वाले व्यक्ति तथा जो व्यक्ति इन पूर्वाग्रहों तथा विभेदक व्यवहारों के लक्ष्य होते हैं दोनों के लिए ही क्षतिकारक होते हैं। पूर्वाग्रहों और विभेदनों से प्रभावित व्यक्तियों में आक्रामक व्यवहार , बाल अपराध, वयस्क अपराध, आक्रोश , हीनता की अनुभूति तथा नाराजगी या कुढन देखी जा सकती है। क्षतिपूर्ति प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप उंची आकांक्षा पायी जा सकती है लेकिन प्रायः व्यक्ति सुस्त, दब्बु, न्यून आकांक्षा से पीड़ित होता है। क्योंकि उसे लगता है कि उसकी व्यावसायिक प्रगति संभव नही है।

सामूहिक दबाव के कारण व्यक्ति प्रायः अनेक परम्परागत व्यवसायों का चयन करने के लिए विवश हो जाता है। बहुधा सामाजिक दबावों के कारण कुछ लोगों की गतिशीलता बाधित हो जाती है। स्थानीय रूप में उपलब्ध व्यवसाय अपनाना उनकी मजबूरी बन जाती है।

व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का स्वरूप भी व्यवसाय के स्वरूप का सशक्त निर्धारक होता है। उच्च सामाजिक स्थिति वाले व्यक्ति उन व्यवसायों या पदों को प्राप्त करना चाहते है जहां उन्हे नेतृत्व के अवसर प्राप्त होते हैं।

6 राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के कारक - आधुनिक विश्व को हम भूमण्डलीय गांव कहते हैं जहां संचार और परिवहन के नये संसाधनों एवं सभी भौगोलिक क्षेत्रों की एक दूरे पर पारस्परिक निर्भरता, उद्योगों का आधुनिकीकरण, कार्यालयों का कंप्यूटरीकरण, आर्थिक मंदी आतंकवाद और उसके फलस्वरूप लोगों का दूसरे क्षेत्रों की ओर पलायन, आर्थिक उदारीकरण उवं अन्य अनेक प्रकार की घटनाएं तेजी से घटित हो रही हैं।

अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों मे अवसर घट रहे हैं तथा अनेक नए उद्योग क्षेत्र विकसित हो रहे हैं। कभी सूचना प्रौद्योगिकी का वर्चस्व देखा जाता है तो कुछ ही वर्षो बाद उस क्षेत्र में संभावनाएं सिमटती हुई प्रतीत होती है। आज किसी व्यक्ति के व्यावसायिक चयन और विकास पर इन घटनाओं का स्वाभाविक प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। अल्प प्रशिक्षित तकनीकी और मजदूर वर्ग को खाड़ी क्षेत्र में संभावनाएं दिखती है तो इंजीनियर, डॉक्टार को अमेरिका और यूरोप में बेहतर संभावना की तलाश रहती है।

किसी देश की नीतियां भी व्यावसायिक चयन को प्रभावित करती हैं आरक्षण जैसी नीति ऐसे प्रभावकों का एक उदाहरण है। जो यह निर्धारित करता है कि कहां व्यक्ति के लिए व्यावसायिक अवसर हैं या कहां उसके लिए मार्ग अवरूद्ध है।

2.5 व्यावसायिक चयन एवं कर्मचारी चयन

व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में आधुनिक उपागम जिस प्रकार व्यावसायिक विकास, व्यावसायिक संतुष्टि और व्यावसायिक प्रगति पर बल देता है उसे देखते हुए सेवायोजक के पक्ष पर विचार किये बिना नहीं रहा जा सकता है। जैसा कि सुपर द्वारा दी गई परिभाषा में सामाजिक हित पर बल दिया गया है, व्यावसायिक निर्देशन और व्यावसायिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति भी व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया को प्रभावित किए बिना संभव नही है। यदि एक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व, व्यावसायिक आत्म संप्रत्यय एवं व्यावसायिक समायोजन व व्यावसायिक प्रगति के लिए सहयोग प्रदान करना है तो कर्मचारी चयन/व्यावसायिक चयन की प्रक्रिया के बनाने के लिए सेवायोजकों द्वार अपनाए जाने वाली नीति को, उनकी समझ को तथा कर्मचारी चयन की पद्धति को मनोवैज्ञानिक आधारों से प्रभावित करना होगा।

व्यावसायिक चयन का उद्देश्य क्या है इसे दो प्रकार से रखा जा सकता है, प्रथम, व्यावसायिक चयन का उद्देश्य एक कर्मचारी को उसकी क्षमताओं और विशेषताओं के अनुरूप उपयुक्त कार्यो में लगाना है। द्वितीय व्यावसायिक चयन का उद्देश्य एक कार्य को संपन्न करने के लिए कार्य की जरूरतों को ध्यान में रखकर उस कार्य पर एक ऐसे कर्मचारी को लगाना जिसमें वांछित क्षमताएं और विशेषताएं हो दोनों लक्ष्यों का सम्मिलित निहितार्थ यही है कि कार्य की मांग और व्यक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं के मध्य मेल स्थापित हो जैसा कि एक ही जैसी बात का दो पृथक रूपों में रखा गया है। दोनो लक्ष्यों के अभीष्ट उद्देश्य पृथक है एक में कार्य के तथा सेवायोजक के हित में यह है कि कार्य पर उपयुक्त व्यक्ति को लगाया जाय जिससे की कार्य भली प्रकार संपादित हो सके जबकि दूसरे लक्ष्य में व्यक्ति का हित

महत्वपूर्ण है। दोनों ही बातें एक सिक्के के दो पहलु की भांति है। यदि कार्य की मांगों जरूरतों और व्यक्ति की क्षमताओं एवं विशेषताओं के बीच उचित मेल की स्थापना, कार्य एवं व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर की जाए तो व्यक्ति को कार्य तुष्टि की प्राप्ति होगी, तथा कार्य क्षेत्र में अच्छे निष्पादन के आधार पर उसकी व्यावसायिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। इसके साथ-साथ सेवायोजक को अच्छे लाभ की प्राप्ति होगी और समाज लाभान्वित होगा। अतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में व्यावसायिक निर्देशन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यावसायिक चयन/कर्मचारी विश्लेषण के आधार किया जाए।

उद्योगों, संगठनों एवं कार्यालयों में कर्मचारियों को विविध परिस्थितियों में विविध प्रकार के कार्य करने होते है। संपन्न किए जाने वाले कार्यों की संरचना में अंतर होता है। अलग अलग प्रकार के कार्यों को संपन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार की योग्यताओं क्षमताओं और विशेषताओं की आवश्यकता होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विविध प्रकार के कार्यों या व्यावसायों की मांगे भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं। यदि कर्मचारी में सौपें गए कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक क्षमताएं या विशेषताएं नही है तो कर्मचारी उस कार्य को कुशलता और सफलतापूर्वक संपादित नही कर सकेगा। ऐसी दशा में उद्योग, संगठन या कार्यालय को क्षति होगी। अतः यह आवश्यक है कि कोई उद्योग या संगठन अथवा कार्यालय किसी कार्य को संपन्न कराने के लिए ऐसे कर्मचारी का चयन करें जो उस कार्य को भली प्रकार पूरा करने के लिए सक्षम एवं योग्य हो।

आधुनिक विश्व में उद्योग एवं संगठन का हित ही सर्वोपरी नहीं होता, कर्मचारी का हित भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है। कर्मचारी जिस कार्य को कर रहा होता है उस कार्य से कर्मचारी को प्राप्त होने वाली कार्य संतुष्टि तथा वहां पर कर्मचारी के व्यावसायिक समायोजन का कर्मचारी के निष्पादन स्तर और उत्पादकता पर एवं इस प्रकार पूरे संगठन की उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है। मानवीय मूल्यों, कर्मचारी हितों एवं औद्योगिक हितो को पूर्णतः एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं किया जा सकता है। व्यक्तियों के मध्य मनोवैज्ञानिक दृष्टियों से व्यापक स्तर पर वैयक्तिक भिन्नताएं पायी जाती है। व्यक्तियों की योग्यताओं, क्षमताओं,रूचियां, अभिक्षमताओं, विशेषताओं, प्रशिक्षण, कार्यकुशलता एंव अनुभव आदि में अंतर पाया जाता है। कर्मचारियों की वैयक्तिक विशेषताओं का उनकी कार्य संतुष्टि, व्यावसायिक समायोजन तथा निष्पादन स्तर पर अपने कार्य क्षेत्र में प्रगति करने की संभावना पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार कर्मचारी के लिए यह महत्वपूर्ण होता है कि वह ऐसे कार्य ' नौकरी ' का चयन करे, जो उसके लिए उपयुक्त हो।

कर्मचारी के लिए उपयुक्त कार्य का चयन तथा सेवायोजकों के लिए उपयुक्त कर्मचारी का चयन महत्वपूर्ण है। कर्मचारी, उद्योग या व्यवसाय एवं समाज के हित में यह महत्वपूर्ण है कि कर्मचारी और कार्य एक दूसरे के प्रति अनुरूपता का किसी भी पक्ष के हित में नहीं होता है। उपयुर्क्त तथ्यों को ध्यान में रखकर व्यावसायिक चयन एवं कर्मचारी चयन की प्रक्रिया वैज्ञानिक आधार पर संपन्न की जाती है। इस प्रक्रिया में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों पर ध्यान रखकर कार्य की आवश्यकताओं तथा इच्छुक अभ्यर्थियों की विशेषताओं के मध्य समेलन स्थापित किया जाता है। इस प्रकार पूरी प्रक्रिया उपयुक्त कर्मचारियों का चयन कर लेने या अनुपयुक्त कर्मचारियों की छंटनी कर देने के कार्य रूप में देखने की

अपेक्षा यह और भी अधिक औचित्यपूर्ण एवं सार्थक होगा कि आधुनिक चयन प्रक्रिया में कार्य और कर्मचारी के मध्य उचित मेल स्थापित करने का कार्य किया जाता है।

अनेक अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि जिन उद्योगों में कर्मचारी चयन के लिए वैधानिक आधार नहीं अपनाया जाता है वहां औद्योगिक संगठन और कर्मचारी दोनों को क्षति पहुंचती है तथा अंततः राष्ट्र एवं समाज को मानवीय तथा आर्थिक संसाधन के क्षेत्र में घाटा उठाना पड़ता है। अनुपयुक्त चयन के कारण अनुपस्थिति में वृद्धि हो जाती है, कार्यकुशलता और उत्पादन में कमी आती है, व्यक्ति के व्यक्तिगत समायोजन में कमी आती है तथा दुर्घटनाओं में वृद्धि हो जाती है।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

- व्यवसाय के चयन और उसके विकास के लिए किन किन चीजों की आवश्यकता होती है? व्याख्या कीजिए।
- व्यवसाय के चयन और कर्मचारी के चयन में विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए

वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक आधार पर चयन प्रक्रिया पूरा करने के दो आधार होते है।

1. कार्य विश्लेषण
2. कर्मचारी विश्लेषण

2.6 कार्य विश्लेषण, कार्य विवरण एवं कार्य विशिष्टीकरण -

कर्मचारी का वैधानिक आधार पर चयन करने हेतु या कर्मचारी द्वारा वैज्ञानिक आधार पर अपने लिए उपयुक्त कार्य का चयन करने हेतु कार्य से संबंधित विवरण की आवश्यकता होती है जिसे कार्य विवरण कहते हैं। कार्य विवरण की प्राप्ति कार्य विश्लेषण के माध्यम से होती है। कार्य विश्लेषण किसी कार्य से संबंधित विविध पक्षों का सूक्ष्म अध्ययन करने की प्रक्रिया है। किसी कार्य को करते समय कार्य की दशा और स्वरूप के बारे में सूचना संकलित करने की प्रक्रिया को ही कार्य विश्लेषण कहते हैं। कार्य विश्लेषण के द्वारा किसी कार्य को करते समय कार्य, कार्य परिस्थिति और व्यक्ति की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है। कार्य विश्लेषण की कुछ परिभाषाएं प्रस्तुत हैं-

अनेस्टी के अनुसार - '' कार्य विश्लेषण का उद्देश्य उस कार्य के लिए, जिसके हेतु कर्मचारी का चयन प्रक्रिया विकसित की जा रही है, कर्मचारी द्वारा किए जाने वाले कार्यों का विवरण उपलब्ध कराना होता है। इस विवरण में निष्पादित होने वाले संक्रियाओं, प्रयुक्त उपकरणों, कार्यों की दशाओं, खतरे और कार्य की अन्य विशिष्ट विशेषताएं, वेतन की दर, वांछित प्रशिक्षण का स्वरूप और मात्रा, पदोन्नति या स्थानान्तरण के अवसर, अन्य कार्यों से संबंध तथा अन्य प्रासंगिक सूचनाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए।"

घिसेली तथा ब्राउन के अनुसार ''कार्य -विश्लेषण एक वर्णनात्मक प्रक्रिया है। इसमें यह वर्णन रहता है कि कर्मचारी वस्तुतः अपने काम पर कार्य के कैसे निष्पादित करते हैं, और किन वास्तविक दशाओं के अर्न्तगत कार्य किया जाता है। कार्य विश्लेषण का परिणाम कार्य विवरण में प्रस्तुत किया जाता है।

घोरपडे के अनुसार- '' कार्य विश्लेषण में कार्य में सम्मिलित नियत कार्य का विवरण विकासित करना, एक कार्य का अन्य कार्यों के साथ सम्बन्ध का निर्धारण करना, और कर्मचारी के लिए अपने कार्यों के सफल निष्पादन हेतु आवश्यक ज्ञान, दक्षताओं एवं क्षमताओं का निर्धारण करना सम्मिलित है।"

कार्य विश्लेषण के लिए अनेक विधियों एवं सूचना साधनों का उपयोग किया जाता है जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है। कार्य विश्लेषण द्वारा कार्य विवरण और कार्य विशिष्टीकरण प्राप्त होता है। कार्य विवरण और कार्य विशिष्टीकरण क्या है, दोनों में क्या अन्तर है तथा कार्य विश्लेषण से इनका क्या, संबंध है कर्मचारी चयन में इनका महत्व है। इनका प्रश्नों का समाधान राबिन्स ने किया है।

स्टीफेन पी0 राबिन्स ;2001 के अनुसार- ''कार्य विवरण इस बात का विवरण है कि कोई पदधारक क्या करता है, कैसे करता है और वैसे क्यों करता है। कार्य विवरण को कार्य की अंर्तवस्तु, परिवेश और परिस्थितियों का परिशुद्ध वर्णन करना चाहिए। कार्य विशिष्टीकरण यह बताता है कि किसी कार्यभार को ग्रहण करने वाले कर्मचारी के पास अपने कार्यों के सफल निष्पादन हेतु न्युनतम स्वीकार्य योग्यता क्या होनी चाहिए। यह कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए आवश्यक ज्ञान, दक्षाताओं और योग्यताओं की पहचान करता है। इस प्रकार कार्य विवरण काम की विशेषताओं की पहचान करता है जबकि कार्य विशिष्टीकरण कार्यभार ग्रहण करने वाले सफल कर्मिक की विशेषताओं की पहचान करता है। '' कार्य विशिष्टीकरण के विवरण में प्रबंधन की नीतियाँ परिलक्षित होती है। कार्य विशिष्टीकरण कार्य आरम्भ से पूर्व योजनाकारों अथवा विधि व्यवस्था द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कार्य विशिष्टीकरण के प्रारूप पर प्रबंधन- कर्मचारी संबंधों, गोष्ठियों, सहमतियों और समझौतों, तकनीकी प्रगति , कार्य और उत्पादन में परिवर्तन जैसे अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है।

कार्य-विवरण तथा कार्य- विशिष्टीकरण दोनों का कार्य करने की विधियों, कार्य की भौतिक एवं प्रशासनिक पारिस्थितियों से सम्बन्ध है। कार्य करने की वास्ताविक दशाओं का वरण करता है, उन पारिस्थितियों और विधियों का वर्णन करता है जो कि व्यावसायिक निर्देशन : व्यावसायिक वरण, विकास,चयन एवं समायोजन वस्तुतः कार्य से सम्बन्धित है, कार्य वास्तव में कैसे निष्पादन होता है, जबकि, कार्य - विनिर्देश यह इंगित करता है कि प्रबंधतंत्र की कार्य के निष्पादन के सम्बन्ध में क्या अपेक्षाएँ है। इस प्रकार कार्य - विवरण तथा कार्य विशिष्टीकरण दोनों एक दूसरे के पूरक है" शार्टल के अनुसार, कार्य-विशिष्टीकरण के साथ मिलकर कार्य - विवरण हमें यह सूचित करता है कि कार्य वस्तुतः क्या चाहता है तथा एक कर्मचारी से हमारी अपेक्षाएँ क्या है। आदर्श रूप में कार्य विवरण का उपयोग नैकरियों या काम के लिए इच्छुक अभ्यर्थियों को कार्य के बारे में विवरण देने के लिए उपयोग किया जाता है। जबकि कार्य- विशिष्टीकरण कर्मचारी चयन प्रक्रिया से सम्बंन्धित लोगों का इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि उन्हें इच्छुक अभ्यार्थियों में कौन -सी योग्यताओं की परख है जो कि उन्हें सफल, उत्पादक, संतुष्टऔर समायोजित कर्मचारी बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

2.6.1 कार्य-विश्लेषण में सूचना के स्त्रोत

कार्य-विश्लेषण का आधार कार्य के बारे में प्राप्त होने वाली सूचनाएँ होती हैं। कार्य विश्लेषण के लिए सूचनाओं को अनेक स्त्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है। कार्य के अनेक पक्ष होते हैं। सभी पक्षों के बारे में सूचनाएँ किसी एक स्त्रोत द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती हैं, अतः कार्य - विश्लेषण के लिए वांछित सूचनाओं का संकलन अलग-अलग स्त्रोतों के माध्यम से किया जाता है। प्रमुख स्त्रोत निम्नांकित हैं:-

1 कार्य का अवलोकन

कार्य - विश्लेषण अनेक प्रकार की सूचनाएँ कार्य स्थल पर कर्मचारियों का प्रत्यक्ष अवलोकन करके प्राप्त कर सकता है। कार्य की परिस्थिति, समय,शिफ्ट, कार्य में लगने वाला समय, कार्य की भौतिक दशा, कार्य गतिविधियाँ जिनकी पुनरावृत्ति होती रहती है एवं प्रयुक्त उपकरण आदि जैसी सूचनाएँ कार्य स्थल पर कर्मचारियों को कार्यरत देखकर प्रशिक्षित अवलोकनकर्ता द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

2 कर्मचारी का साक्षात्कार

सभी प्रकार की कार्य विषयक सूचनाओं को अवलोकन विधि द्वारा प्राप्त करना संभव नहीं हो सकता है। ऐसी सूचनाएँ कर्मचारीयों, विशेषकर कार्य पर्यवेक्षक, या कार्य प्रभारी के व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। कठिनाई, संभावित खतरे, आवश्यक प्रशिक्षण एवं अनुभव, यांत्रिक अभिक्षमता की आवश्यकता जैसी प्रश्नों से सम्बन्धित सूचनाएँ साक्षात्कार द्वारा की जा सक्ती है।

3 प्रश्नावली में कर्मचारियों की प्रतिक्रियाएँ

साक्षात्कार के माध्यम से सूचनाओं का संकलन व्यय साध्य है, समय तथा धन अधिक व्यय होता है। प्रश्नावली विधि द्वारा शिक्षित कर्मचारीयों से वांछित कार्य सूचनाएँ लिखित रूप में प्राप्त की जा सकती है। ऐसी सूचनाएँ डाक प्रणाली द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है। प्रश्नावलियों में कर्मचारियों द्वारा दी गयी सूचनाओं का सतर्कतापूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए क्योंकि सूचनाएँ अधूरी और असत्य हो सकती हैं। कर्मचारी प्रश्नों का उत्तर गंभीरतापूर्वक देंगे यह भी संदिग्ध रहता है।

4 कार्य दैनिकी-

कुछ कार्य संगठन कर्मचारियों के लिए कार्य दैनिकी का उपयोग करते हैं जिसमें कर्मचारी अपने प्रतिदिन के कार्य को वितरण अंकित करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त होने वाली सूचनाओं के संकलन में अतिरिक्त समय और धन व्यय नहीं होता है क्योंकि सूचनाएं पहले सेही अंकित रहती हैं।

5 चित्रांकन स्त्रोत विधियां –

आधुनिक परिवेश में कार्य स्थल की वीडियों रिकार्डिंग की जा सकती है। यह क्रिया वास्तविक अवलोकन करने जैसी ही है। लेकिन निरीक्षण करते समय अवलोकनकर्ता की उपस्थिति से जो वस्तुस्थिति प्रभावित हो सकती है वह आशंका इस विधि से निरस्त हो जाती है। इस स्त्रोत का यह लाभ भी है कि कार्य- विश्लेषक की सुविधा के अनुसार कभी भी विडियो रीप्ले करके बाद में सूचना के स्त्रोत को प्रकट किया जा सकता है

2.6.2 कर्मचारी विश्लेषण

जैसा कि अनेक बार इस अध्याय में दोहराया जा चुका है कर्मचारी चयन की प्रक्रिया में कार्य तथा व्यक्ति दोनों के बारे में वितरण आवश्यक होता है। कार्य विवरण तथा कार्य विशिष्टीकरण की प्राप्ति कार्य विश्लेषण के माध्यम से होती है जिससे यह ज्ञात होता है कि कर्मचारी को क्या करना है, कर्मचारी से क्या अपेक्षित है, कार्य की मांग या जरूरतें क्या है। प्राप्त हुई कार्य विषयक जानकारियों के आधार पर खोज आरम्भ होती है। एक ऐसे कर्मचारी की जो निधार्रित कार्य में अन्तर्निहित कर्त्तव्यों का भली प्रकार निर्वहन कर सकें। किन्तु कर्मचारी चयन का कार्य व्यक्ति की क्षमताओं विशेषताओं, रूचियों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त हुए बिना पूरा नहीं किया जा सकता है। कार्य कतिपय मांग प्रस्तुत करता है जिसकी पूर्ति कर्मचारी द्वारा की जानी चाहिए, अतः यह आवश्यक है कि कर्मचारी को कार्य सौंपने से पहले यह सुनिश्चित कर लिया जाए कि इच्छुक कर्मचारी में कार्य की मांगों को पूरा कर पाने की सामर्थ्य है या नहीं। कर्मचारी विश्लेषण में कर्मचारी के बारे में निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त की जाती है।

1. आयु
2. लिंग
3. शिक्षा और प्रशिक्षण
4. अनुभव
5 मानसिक क्षमताएं और बुद्धि
6. रूचियां और अभिक्षमताएं
7. व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएं

इच्छुक कर्मचारियों के बारे में उपयुक्त सूचनाएं अनेक विधियों के आधार पर प्राप्त हो सकती हैं ये विधियां निम्नांकित है।

1. आवेदन पत्र
2. संस्तुति पत्र
3. शैक्षिक अभिलेख
4. मनोवैज्ञानिक परीक्षण
5. शारीरिक परिक्षण
6. चयन साक्षात्कार
7. लिखित परीक्षा
8. छदम कार्य या निष्पादन परीक्षण

2.7 प्रमुख कर्मचारी चयन विधियां

उपर्युक्त विधियों में से औद्योगिक संगठनों द्वारा मुख्यतः साक्षात्कार, लिखित परीक्षा, मनोवैज्ञानिक परीक्षण और छद्म कार्य निष्पादन परीक्षण का उपयोग किया जाता है। अतः इन चार विधियों का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत है। एक बार पुनः यह याद दिलाना हमारा कर्तव्य है कि यहपुस्तक निर्देशन से संबंधित है, औद्योगिक मनोविज्ञान से संबंधित नहीं किन्तु कर्मचारी चयन के बारे में विवरण इस कारण प्रस्तुत है

कि निर्देशन कार्य में कर्मचारी चयन प्रक्रिया के बारे में व्यक्ति एवं परामर्शदाता दोनों को जानकारी होनी चाहिए जिससे परामर्शी, छात्र एवं अभ्यर्थी इस हेतु यथासमय अपनी तैयारी कर सकें।

आवेदन पत्र में आवेदक द्वारा अपना विवरण प्रस्तुत किया जाता है लेकिन उसकी वस्तुनिष्ठता, वैधता एवं विश्वसनीयता की परख आवश्यक है। शैक्षिक संस्था प्रशिक्षण संस्था या पूर्व संगठन द्वारा दिया गया संस्तुति पत्र भी उपयोगी होता है। कुछ खास श्रेणी के कार्यों के लिए शारीरिक परीक्षण अपरिहार्य होता है। शैक्षिक अभिलेख निष्पादन स्तर की निरन्तरता का वर्णन करता है किन्तु कर्मचारी चयन के लिए संगठन अपने स्तर से साक्षात्कार, परीक्षण, मापन पर ही निर्भर होना पसंद करते हैं।

(क) चयन साक्षात्कार

समूचे विश्व में चयन साक्षात्कार कर्मचारियों के चयन की मान्य प्रक्रिया के रूप में स्वीकृत है। चयन के लिए प्रयुक्त होने वाली युक्तियों में साक्षात्कार बहुधा प्रयुक्त होने वाली विधि है L. Yoo Lim, 1994। एशिया में भी अधिकतर कम्पनियाँ कर्मचारियों की परख (स्क्रीनिंग) के लिए साक्षात्कार पर भरोसा करती हैं। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि साक्षात्कार का चयन प्रक्रिया में बहुधा उपयोग ही नहीं होता है अपितु इसकी प्रभावशीलता भी अधिक है। अच्छी से अच्छी शैक्षिक योग्यता वाले अभ्यर्थी भी साक्षात्कार में अच्छा प्रदर्शन करने में विफल होने पर कार्य का अवसर पाने से वंचित रह जाते हैं जबकि अनेक कम योग्य अभ्यर्थी भी चयनित हो जाते हैं।

इस प्रकार यह प्रदर्शित होता है कि साक्षात्कार चयन के लिए उपयोगी विधि है किन्तु थोड़े से प्रश्नों के आधार पर, लापरवाहीपूर्वक सम्पन्न असंरचित साक्षात्कार विधि के अनेक सीमाएँ होती हैं। साक्षात्कारकर्त्ताओं में अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह होते हैं जो कि कुछ अभ्यर्थियों के पक्ष में तथा अन्य के विरुद्ध होते हैं और चयन प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव डालते हैं अतः रॉबिन्स(2001) यह सुझाव देते हैं कि साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्त्ताओं को प्रश्नों का मानक सेट, सूचना की रिकार्डिंग के लिए एकरूपतापूर्ण प्रणाली, आवेदन पत्रों की उपयुक्त ग्रेडिंग प्रणाली जैसी विधियों का उपयोग करना चाहिए। साउथ-वेस्ट एयर लाइन्स, माइक्रोसॉफ्ट और प्राक्टर एण्ड गैम्बिल जैसी कम्पनियाँ साक्षात्कार का उपयोग अभ्यर्थी एवं संगठन के बीच मेल का अध्ययन करने हेतु कर रही हैं। साक्षात्कार के माध्यम से यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि संगठन की संस्कृति और छवि के अनुरूप कर्मचारी की व्यक्तिगत विशेषताएँ, मूल्य आदि हैं या नहीं हैं।

(ख) लिखित परीक्षा प्रणाली लिखित परीक्षाओं के माध्यम से अभ्यर्थी की बुद्धि, अभिक्षमता, योग्यता, रुचियों और निष्ठा को परखने का प्रयत्न किया जाता है। बौद्धिक परीक्षा, अभियांत्रिक, प्रात्यक्षिक शुद्धता, संज्ञानात्मक सामर्थ्य आदि के मूल्यांकन के लिए लिखित परीक्षा प्रणाली की पर्याप्त वैध पाया गया है। टोयोटा जैसी जापानी कम्पनी अमेरिका में अपने कारखाने के लिए कर्मचारियों का इसी विधि द्वारा परीक्षण किया है।

(ग) निष्पादन परीक्षण इस प्रकार के परीक्षण हेतु वास्तविक कार्य में सम्मिलित गतिविधियों के एक प्रदितर्श की रचना करके अभ्यिर्थियों की क्षमताओं का परीक्षण किया जाता है। इस चयन प्रक्रिया का उपयोग मुख्यतः मैकेनिक वेल्डर, इलेक्ट्रीशियन जैसे दक्ष कारीगरों के चयन हेतु किया जाता है। कार निर्माता कम्पनी बी. एम. डब्लू इस प्रणाली की उपयोग करती है।

(घ) मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन

व्यक्तित्व और मानसिक क्षमताओं एवं विशेषताओं की जानकारी के लिए मनोविज्ञान परीक्षणों की उपयोगिता मनोविज्ञान विद्यार्थियों और कम्पनी अधिकारियों से छिपी हुई नहीं है। उक्त परीक्षण वैध और विश्वसनीय होता है। सेना में अधिकारियों की भर्ती के लिए मानसिक क्षमताओं के अध्ययन हेतु इन विधियों पर बहुत बल दिया जाता है। सैनिक अधिकारियों तथा औद्योगिक संगठन के उच्च पदस्थ प्रबंधकों को अनेक प्रकार की दबावपूर्ण एवं तनावपूर्ण दशाओं में कार्य करना पड़ता है अतः उनकी क्षमताओं का भली प्रकार परीक्षण किया जाना चाहिए। कुछ वर्ष पहले भारतीय सेना के कुछ प्रशिक्षणरत अधिकारियों द्वारा आत्महत्या किये जाने के संदर्भ में यह तथ्य प्रकाश में आया है कि चयन की अवस्था में इन युवकों ने मनोवैज्ञानिक परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी। (तथापि) किन्ही कारणों से उन्हें प्रशिक्षण हेतु चुन लिया गया था और प्रशिक्षण अवधि में ही वे युवक तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाये।

(ङ) मूल्यांकन केन्द्र

कुछ संगठन कार्य-स्थल पर ही अभ्यर्थियों की क्षमताओं का परीक्षण करते समय मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं का उपयोग करते हैं। ऐसी प्रणाली को मूल्यांकन केन्द्र प्रणाली कहते हैं। इस प्रक्रिया में साक्षात्कार, कार्य परीक्षण, नेतृत्व विहीन परिचर्चा, तथा व्यापारिक- निर्णय-क्रीड़ा जैसी अनेक परीक्षण गतिविधियाँ सम्मिलित की जाती हैं। इस प्रक्रिया द्वारा कर्मचारियों का चयन कार्य निष्पादन की दृष्टि से भविष्यकथन हेतु वैध पाया गया है।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

- किसी एक व्यवसाय में कर्मचारी के कार्य का विवरण तैयार कीजिए।
- व्यवसाय में कर्मचारी के कार्य का विश्लेषण किस प्रकार करेंगे?
- कर्मचारी के चयन की प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।

2.8 व्यावसायिक समायोजन

उपयुक्त समायोजन की स्थापना निर्देशन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। जीवन के विविध क्षेत्रों में से व्यावसायिक क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने के लक्ष्य में व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से सहयोग प्रदान किया जाता है।

व्यावसायिक जीवन क्षेत्र के अनेक पक्ष होते हैं। व्यावसायिक समायोजन प्रथम दृष्टि में बहुधा उतना व्यापक अर्थ में नहीं ग्रहण किया जाता है जितना कि यह वस्तुतः व्यापक होता है। एक व्यक्ति को व्यावसायिक क्षेत्र में अपने कार्य विशेष, कार्य की दशाओं, कार्य सम्पादित करने के लिए आवश्यक कार्य- कलापों के साथ समायोजन स्थापित करना होता है तथा कार्य स्थल के समय समग्र परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करना होता है। व्यक्ति की सफलता और सन्तुष्टि निर्धारित कार्य को कुशलतापूर्वक पूरा करने, कार्य सम्बन्धी लक्ष्य को प्राप्त कर लेने मात्र से सुनिश्चित नहीं हो सकती है। कार्यस्थल पर भौतिक और सामाजिक परिवेश के अनेक ऐसे आयाम देखे जा सकते हैं जो व्यक्ति की

सन्तुष्टि और सुखानुभूति को प्रभावित करते हैं। कार्य स्थल पर व्यक्ति के सहकर्मी, अधिकारी, कनिष्ठ, ग्राहक, आपूर्तिकर्त्ता (सप्लायर), बैंकर तथा अन्य अनेक सामाजिक प्रतिनिधि एक-दूसरे के साथ विभिन्न व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सम्पर्क में आते हैं। उक्त व्यावसायिक सम्बन्ध न्यूनाधिक सामाजिक सम्बन्धों की एक ऐसी संरचना का निर्माण करते हैं जिसकी गुणवत्ता व्यक्ति को कार्य स्थल पर अपने व्यवसाय से प्राप्त होने वाली सुखानुभूति की मात्रा कोप्रभावित करती है। सामाजिक परिवेश के अतिरिक्त भौतिक परिवेश तथा आर्थिक लाभ भी समायोजन स्थापित करने में महत्वपूर्ण कारक होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्ति का व्यावसायिक समायोजन मात्र व्यक्ति की कार्यकुशलता द्वारा नियंत्रित नहीं होता है। व्यक्ति के गुणों और विशेषताओं तथा कार्य की मांग या जरूरतों के मध्य व्यावसायिक समायोजन हेतु संतुलन स्थापित करने के अतिरिक्त कार्य स्थल पर अच्छे कोटि के भौतिक आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश का भी विकास किया जाना आवश्यक है कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय का वरण आर्थिक लाभ हेतु करता है, किन्तु मात्र आर्थिक लाभ के माध्यम से उसका समायोजन सुनिश्चित नहीं हो जाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक आवश्यकताएं ऐसी होती है जिनकी पूर्ति व्यक्ति के जीवन में समायोजन की स्थापना, सफलता की प्राप्ति और सुख बोध के लिए आवश्यक होती है अतः कोई व्यवसाय या कार्य व्यक्ति को अपेक्षाकृत कम आर्थिक लाभ प्रदान करे किन्तु अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति करता हो तो आर्थिक दृष्टि से कम लाभकारी प्रतीत होने वाले कार्य से भी व्यक्ति करे अधिक संतुष्टि और समायोजन की प्राप्ति होगी।

समायोजन की स्थापना में व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा परिवेश की दशाओं के अतिरिक्त व्यक्ति की सामाजिक दक्षता भी एक महत्वपूर्ण कारक है। व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ उपयुक्त समायोजन करने में निपुण है तो समायोजन सरलतापूर्वक स्थापित हो सकता है।

व्यावसायिक निर्देशन का व्यावसायिक समायोजन के क्षेत्र मे प्रमुख कर्तव्य यह है कि 1 कार्य स्थल पर ऐसे परिवेश का विकास करने में सहयोग दिया जाए जिससे कार्य असंतोष में कमी आये तथा कार्य संतोष में वृद्धि हो, तथा 2, व्यक्तियों को कार्य स्थल पर सामाजिक संबंधों की स्थापना में निपुणता, दक्षता अर्जित करने हेतु सहयोग दिया जाए।

2.8.1 व्यावसायिक समायोजन के सिद्धांत

कार्य संतोष, कार्य असंतोष, कार्य अभिप्रेरणा, की व्याख्या करने के लिए अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। व्यावसायिक समायोजन की दृष्टि से महत्वपूर्ण कारकों की व्याख्या मे हर्जबर्ग, मैस्लो, एल्डरफर, मैक्लीलैंड, स्टेसी ऐडम, और व्रूम के सिद्धांत प्रमुख है।

(1) हर्जबर्ग का द्वि-कारक सिद्धांत - फ्रेडरिक हर्जबर्ग द्वारा प्रस्तावित सिद्धांत जिसे अभिप्रेरणा आरोग्य सिद्धांत भी कहते हैं उन तत्वों की व्याख्या करता है जिसकी अपेक्षा व्यक्ति अपने व्यवसाय से करता है। हर्जबर्ग कार्य संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारकों को दो श्रेणियों में विभाजित करते है, 1. स्वास्थ्य कारक एवं 2. अभिप्रेरक कारक

हर्जबर्ग ने स्वास्थ्य संबंधी कारकों की श्रेणी में व्यावसायिक्क संगठन/कंपनी की नीति और प्रशासन, पर्यवेक्षण, पर्यवेक्षण के साथ संबंध, सहकर्मियों के साथ संबंध, सामाजिक संस्थिति, सुरक्षा ता व्यक्तिगत

जीवन को रखा। हर्जबर्ग के अनुसार ऐसे कारक जिनके अभाव में कार्य असंतोष विकसित होता है तथा जिनसे कार्य संतोष विकसित होता है तथा एक दूसरे से पृथक होता है। इस प्रकार यदि कार्य स्थल पर स्वास्थ्य जनक कार्य दशाओं का अभाव हो या कर्मचारी को स्टेटस, सुरक्षा आदि की प्राप्ति नही हो रही है तो असंतोष विकसित होगा तथा समायोजन में कमी आएगी ऐसी दशा में व्यावसायिक निर्देशन की कार्य स्थल के परिवेश की रचना के लिए जिम्मेदार लोगों को इस प्रकार के कारकों की पहचान करके उन्हें परिवेश से निष्कासित करने मे सहयोग देने की होती है। हर्जबर्ग यह भी स्पष्ट करते है कि कार्य असंतोष और कार्य संतोष एक दूसरे के ऐसे विलोम नही है। कि कार्य असंतोष की दशाओं और कारको को कार्य स्थल के परिवेश में से निष्कासित कर देने मात्र से कार्य संतोष की दशा की स्थापना हो जाएगी। चूंकि दोनो प्रकार के कारक एक दूसरे से भिन्न और पृथक होते है इसलिए एक श्रेणी के कारकों के माध्यम से कार्य असंतोष और फलतःव्यावसायिक असमायोजन के संकट को निरस्त तो किया जा सकता है लेकिन यदि हम यह चाहते है कि सकारात्मक अर्थो में व्यावसायिक समायोजन की स्थापना हो तो दूसरी श्रेणी के कारकों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

हर्जबर्ग द्वारा अपने अध्ययन में कर्मचारियों से पूछे गए प्रश्नों के आधार पर कार्य संतुष्टि प्राप्त होने में सहायक जिन कारकों की जानकारी प्राप्त हुई, उन्हे आंतरिक या निजी अभिप्रेरणा के रूप में देखा जाता है।इसके अंतर्गत उपलब्धि, पहचान/प्रत्याभिज्ञा, कार्य विशेष, जिम्मेदारी, प्रगति ,विवृद्धि को महत्वपूर्ण पाया गया है।

स्पष्ट है कि कार्य संतुष्टि और व्यावसायिक समायोजन की दृष्टि से बहिर्स्थ आवश्यकताएं दोनो ही महत्वपूर्ण है। बहिर्स्थ आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में असंतुष्टि और व्यावसायिक कुसमायोजन की उत्पत्ति होती है। अतः असंतोष घटाने के लिए व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम द्वारा इन कारकों के कुप्रभावों के निष्कासन में सहयोग दिया जाना चाहिए लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात उन कारकों पर ध्यान देना है जिनके माध्यम से कार्य संतुष्टि विकसित करने में सहायता मिलती है।

(2) मैस्लों का आवश्यकता अनुक्रम सिद्धांत - मैस्लो द्वारा प्रतिपादित आवश्यकताओं के अनुक्रमिक विकास सिद्धांत में आवश्यकताओं की पांच श्रेणियां - दैहिक आवश्यकताएं, सुरक्षा आवश्यकताएं, प्रेम एवं स्नेह, आत्म सम्मान आवश्यकता, तथा स्व आत्मीकरण वर्णित है। अभिग्रह यह कि पांच आवश्यकताएं क्रमशः उच्चता स्तर की ओर अग्रसर हैं। जब निम्न स्तर की आवश्यकता पूरी होती है तब व्यक्ति उच्च स्तर की दिशा में अग्रसर होता है। व्यावसायिक समायोजन की दृष्टि से इस सिद्धांत का निहितार्थ यह है कि व्यवसाय की दशाओं और व्यवस्थाओं द्वारा कर्मचारी की उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था भी होनी चाहिए। यदि एक कर्मचारी की उच्च आवश्यकताओं(विशेषकर उच्च स्तर पर कार्यरत वे कर्मचारी जिनकी आवश्यकताओं का स्तर स्व- आत्मीकरण की अवस्था तक पहुंच गया है) की पूर्ति की दिशा में सहयोग नही दिया जाएगा तो कार्य संतुष्टि की प्राप्ति नहीं हो पाएगी।

(3) एल्डफर का ई. आर. जी. सिद्धांत - क्लेटन एल्डरफॅर ने वैज्ञानिक शोध के आधार पर मैस्लों के सिद्वांत को परिमार्जित करते हुए महत्वपूर्ण आवश्यकताओं के तीन समूह बनाए। (1) आवश्यकताओं का अस्तित्व संबंधी समूह जिसमें दैहिक तथा सुरक्षा की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया गया है। (2)

सम्बन्धन संबंधी आवश्यकताएं तथा(3) वैकासिक आवश्यकताएं। इस सिद्धांत का नामकरण का तात्पर्य इन्हीं तीन आवश्यकता समूहों से है। मैस्लों के सिद्धांत में अगले अनुक्रम की आवश्यकताओं में अधिक तीव्रता बतायी गई है लेकिन ईआरजी सिद्धांत का मानना है कि 1, यदि अगले अनुक्रम की आवश्यकता पूरी नहीं होती है तो कर्मचारी में निचले अनुक्रम की आवश्यकता तीव्र हो जाएगी। 2, निम्न अनुक्रम की आवश्यकता संतुष्ट होने पर व्यक्ति उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति चाहेगा।3, एक ही समय अनेक आवश्यकताएं कर्मचारी को अभिप्रेरित कर रही हो सकती है। तथा 4, जब उच्च स्तर की आवश्यकता के बिन्दु पर पहुंचकर व्यक्ति विफल हो जाता है तब उसका प्रतिगमन निम्न स्तर की आवश्यकता की ओर हो जाता है अर्थात आवश्यकताओं की श्रृंखला में कुण्ठा- प्रतिगमन प्रणाली कार्य करती है।

(4) मैक्लीलैंड का आवश्यकता सिद्धांत - यह सिद्धांत मैक्लीलैंड और उनके सहयोगी द्वारा विकसित किया गया है। कार्य निष्पादन, कार्य अभिप्रेरणा, और कार्य संतुष्टि के संदर्भ में यह सिद्धांत तीन आवश्यकताओं उपलब्धि आवश्यकता , शक्ति आवश्यकता, तथा संबंधन आवश्यकता पर केंद्रित करता है। इन आवश्यकताओं की दृष्टि से कर्मचारियों में वैयक्तिक भिन्नताएं पायी जाती है। अतः किसी कर्मचारी की व्यावसायिक संतुष्टि या समायोजन की मात्रा इस बात से प्रभावित होती है कि निर्धारित कार्य को संपन्न करते समय उसकी अभिप्रेरणाएं किस सीमा तक संतुष्ट हो रही है।

उपलब्धि आवश्यकता की प्रबलता जिन व्यक्तियों में पायी जाती है वे उत्तरोत्तर और अच्छा कार्य करना चाहते हैं तथा अन्य व्यक्तियों की तुलना में बेहतर निष्पादन देना चाहते हैं। इसलिए ऐसे लोग उन व्यावसायिक परिस्थितियों में अधिक सफल और संतुष्ट होते है जहां व्यक्तिगत जिम्मेदारी हो मध्यम मात्रा मे जोखिम हो तथा उनके कार्य निष्पादन के बारे में त्वरित गति से मूल्यांन सूचना की प्राप्ति हो। प्रबंधन कार्य करने वाले कर्मचारियों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि सबसे अच्छे प्रबंधक वे लोग होते हैं जिनमें शक्ति अभिप्रेरणा तीव्र तथा संबंधन अभिप्रेरणा मंद होती है मैक्लीलैंड1976 इसका निहितार्थ यह है कि व्यावसायिक समायोजन स्थापित होने में इस बात का महत्व है कि कार्य करने की परिस्थितियां कर्मचारियों की उपलब्धि, संबंधन औरशक्ति की अभिप्रेरणा की किस रूप में पूर्ति करती है।

(5) जे.स्टेसी एडम्स का समानता सिद्धांत - इस सिद्धांत के अनुसार अपने कार्य निवेशों जैसे प्रयास, अनुभव,शिक्षा, निपुणता की मात्रा और कार्य निर्गतों जैसे वेतनमान, वेतनवृद्धि,मान्यता, सम्मान आदि की तुलना अन्य व्यक्तियों के कार्य निवेशों और उनको प्राप्त हो रहे कार्य निर्गतों के साथ करता है। ज बवह यह देखता है समान कार्य निवेश वाले अन्य लोगों का प्राप्त होने वाले लाभों (कार्य निर्गतों) की भांति ही उसे भी लाभ की प्राप्ति हो रही है। तब कर्मचारी को न्याय की व्यवस्था की अनुभूति होती है। जब कर्मचारी यह अनुभव करता है कि असमानता की नीति अपनायी जा रही है तब अन्याय और समानता विषयक तनाव की उत्पत्ति होती है।

अपनी तुलना के लिए कर्मचारीगण मित्रों, पड़ोसियों, सहकर्मियों, अन्य संगठन में कार्यरत व्यक्तियों या अपने पुराने कार्यस्थल को संदर्भ में ले सकता है। तुलना के लिए संदर्भ का चयन कई कारकों पर निर्भर होता है।

कार्य संतुष्टि में न्याय की अभिभूति के महत्व को देखते हुए आधुनिक शोधकार्यों ग्रेओन बर्ग1996, ने न्याय और समानता के अर्थ को व्यापक बनाने की कोशिश की है जहां पहले वितरणात्मक न्याय पर ही

बल दिया जाता था वही अब प्रक्रियात्मक न्याय अर्थात वितरणात्मक न्याय स्थापित करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया के बारे में प्रत्यक्षण को भी महत्व दिया जा रहा है।

इस प्रकार समानता और न्याय का सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि कर्मचारियों की कार्य अभिप्रेरणा, संतुष्टि और समायोजन की मात्रा तुलनात्मक पुरस्कार और निरपेक्ष पुरस्कार दोनो से प्रभावित होती है। (पी.एस गुडमैन,1977, जे. ग्रीनबर्ग 1987)

(6) व्रूम का प्रत्याशा सिद्धांत- विक्टर व्रूम ने 1964 द्वारा विकसित प्रत्याशा सिद्धांत का मूल अभिग्रह यह है कि कार्य करने की प्रवृत्ति का बल उस प्रत्याशा की प्रबलता, जिसकी पूर्ति व्यक्ति द्वारा किए जा रहे कार्यों द्वारा होनी है तथा इस प्रतिफल के लिए व्यक्ति में आकर्षण की मात्रा द्वारा प्रभावित होता है। यह सिद्धांत तीन प्रकार के संबंधों को महत्वपूर्ण बताता है-1. प्रयत्न निष्पादन संबंध 2. निष्पादन पुरस्कार संबंध 3. पुरस्कार व्यक्तिगत लक्ष्य संबंध।

इस सिद्धांत का वर्णन करते हुए स्टीफेन पी. राबिन्स 2001 ने लिखा है कि'' प्रत्याशा सिद्धांत यह भविष्य कथन करता है कि एक कर्मचारी तभी उच्च स्तर पर प्रयास करेगा जबकि उसे प्रयत्न निष्पादन, निष्पादन पुरस्कार तथा पुरस्कार व्यक्तिगत लक्ष्यों की संतुष्टि क मध्य प्रबल संबंधों के अस्तित्व का प्रत्यक्षण हो। उनमें से प्रत्येक संबंध अन्य सुनिश्चित कारकों द्वारा प्रभावित होताहै। उदाहरणार्थ, अच्छे निष्पादन की दिशा में प्रयत्न हेतु व्यक्ति में आवश्यक क्षमताएं होनी चाहिए तथा व्यक्ति के निष्पादन के मूल्यांकन की प्रणाली के बारे में यह प्रत्यक्षण हो कि प्रणाली न्यायपूर्ण है। निष्पादन पुरस्कार संबंध तब मजबूत प्रतीत होगा जबकि व्यक्ति का यह प्रत्यक्षण हो कि पुरस्कार निष्पादन के आधार पर न कि वरिष्ठता, व्यक्तिगत पक्षधरतया अन्य मानकों के आधार पर दिया जाएगा।.........(तथा) पुरस्कार व्यक्तिगत लक्ष्य संबंध एवं अभिप्रेरण उस सीमा तक प्रबल होगी जहां तक कि व्यक्ति यह प्रत्यक्षण करता है कि अच्छे निष्पादन के कारण व्यक्ति को प्राप्त हुआ पुरस्कार उसकी महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को संतुष्ट करता है।

उपयुर्क्त सिद्धांतोंद्वारा, जो कि वस्तुतः एक दूसरे के पूरक है, यह बात बार बार स्पष्ट हो रही है कि व्यक्ति को अपने कार्यक्षेत्र में भली प्रकार अभिप्रेरित करने, संतुष्ट करने और समायोजित होने के लिए अनेक कारकों पर सेवायोजक द्वारा मनौवैज्ञानिकों के सहयोग से ध्यान देना चाहिए। व्यावसायिक निर्देशन सेवायोजकों प्रशासकों और प्रबंधकों को सहयोग देने के अतिरिक्त कार्यरत कर्मचारियों को भी यह प्रत्यक्षण करने में सहयोग दे सकता है। कि कर्मचारी भी अपनी दक्षता एवं निष्पादन में वृद्धि करके अपनी अर्न्तस्थ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील होकर व्यावसायिक समायोजन स्थापित कर सकते हैं।

2.9 व्यावसायिक निर्देशन में मनोवैज्ञानिकों की भूमिका

व्यावसायिक निर्देशन दीर्घकालिक कार्यक्रम है यह कार्यक्रम एक प्रकार से जीवनपर्यन्त व्यक्ति को विभिन्न रूपों में सहयोग प्रदान करता है। व्यावसायिक चयन करने, चयनित व्यवसाय हेतु तैयारी करने, व्यावसाय का वरण करने, व्यवसाय क्षेत्र में विकास जैसी सभी गतिविधियों हेतु व्यावसायिक निर्देशन आवश्यक है। जहां कही व्यक्ति के व्यावसायिक हित का प्रश्न उत्पन्न होता है। व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकता प्रकट हो जाती है तथा मनोवैज्ञानिकों की भूमिका रेखांकित होने लगती है।

व्यावसायिक निर्देशन के अंतर्गत अनेक प्रकार की सेवाएं सम्मिलित की जाती है मनोवैज्ञानिको की भूमिका ऐसी समस्त सेवाओं में निहित है। इन भूमिकाओं का निम्नवत समझा जा सकता है।

(1) मनोवैज्ञानिक की पहली भूमिका व्यक्तियों को मूल्यांकन सेवा प्रदान करना है। व्यावसायिक विकास के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को अपनी क्षमताओं, योग्यताओं और विशेषताओं को वस्तुनिष्ठ रूप में समझने की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति की अपने बारे में सूचनाएं वैद्य होंगी तो उपयुक्त व्यावसायिक आत्म संप्रत्यय का विकास होगा। मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों को अपने बारे में सत्यबोध अर्जित करने की दिशा में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा प्राप्त परिणमों के माध्यम से सहयोगी सिद्ध होता है। यदि उपयुक्त व्यावसायिक आत्म संप्रत्यय का विकास नही हुआ तो व्यावसायिक चयन और वरण त्रुटिपूर्ण हो जाएगा तथा व्यावसायिक समायोजन एवं संतुष्टि में कठिनाई आयेगी।

(2) मनोवैज्ञानिक कार्य - विश्लेषण, कार्य विवरण, तथा कार्य विशिष्टीकरण तैयार करने में सहयोग देता है। कार्य विवरण एवं कार्य विशिष्टीकरण के माध्यम से मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों एवं प्रशिक्षुओं को यह ज्ञान उपलब्ध कराता है कि किस प्रकार के व्यवसाय क्षेत्र में प्रवेश के लिए उन्हें किन क्षमताओं, योग्याताओं और व्यक्तित्व विशेषताओं को अर्जित करना होगा।

(3) व्यवसाय के बारे में दो प्रकार की सूचनाएं छात्रों के लिए उपयोगी होती है। प्रथम श्रेणी की सूचनाएं कार्य विवरण के रूप में प्राप्त होती है। दूसरी श्रेणी में कार्य जगत का व्यापक वर्णन होता है। कौन से क्षेत्रों में कर्मचारियों की भविष्य में कितनी मांग संभावित है। किस प्रकार की नई तकनीकों का उपयोग हो रहा है या भविष्य में उपयोग किया जाना संभव है तथा उस नई तकनीकि के उपयोग का सेवायोजन के प्रारूप पर क्या प्रभाव पड़ेगा, एवं व्यवसाय क्षेत्र में प्रशिक्षित अभ्यर्थियों की आपूर्ति दर क्या होगी? कुल मिलाकर विभिन्न व्यवसाय क्षेत्रों में व्यक्ति की क्या संभावना है ? इस प्रकार की सूचना उपलब्ध कराना सूचना सेवा का कर्तव्य है। मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की सूचना सेवा अन्य निर्देशन कार्मिकों एवं सेवायोजन विभाग के सहयोग से प्रदान कर सकता है।

(4) मनोवैज्ञानिकों की सबसे प्रमुख भूमिका परामर्शदाता के रूप में होती है। परामर्श देने का कार्य विद्यार्थियों, प्रशिक्षुओं, अभ्यर्थियों, कर्मचारियों एवं सेवायोजको/प्रबंधकों सभी के साथ संबंधित होता है। कभी उपयुक्त व्यवसाय के चयन हेतु परामर्श दिया जाता है तो कभी व्यावसायिक विकास हेतु या व्यावसायिक समायोजन अथवा प्रगति के लिए परामर्श दिया जाता है। मनोवैज्ञानिक इन सभी क्षेत्रों में कार्यरत होते हैं।

(5) मनोवैज्ञानिकों की पांचवी भूमिका विद्यार्थियों को व्यवसाय का वरण करने हेतु व्यावसायिक स्थापन सेवा के माध्यम से सहयोग देना है। आधुनिक परिस्थितियों में व्यवसाय की विविधता, उद्योग जगत की व्यापकता, किसी व्यवसाय के लिए विशिष्टता की मांग का प्रतिफल यह है कि अभ्यर्थी और उद्योग के बीच सीधा संबंध स्थापित होना कठिन हो जाता है। अतः अच्छे शिक्षण और प्रशिक्षण संस्थान व्यावसायिक स्थापन सेवा के माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षण कार्य समाप्त होने के समय से पूर्व ही व्यवसाय अपना लेने के लिए आवश्यक सहयोग देते है।

(6) व्यवसाय के क्षेत्र में प्रविष्ट होने के पश्चात व्यक्ति के जीवन में व्यापक परिवर्तन आता है। व्यक्ति को कार्य करने की भौतिक दशा, सहकर्मियों तथा अधिकारियों के साथ उचित संबंध स्थापित करना होता है।

व्यवसाय की उत्पादकता संबंधी मांग की पूर्ति करनी होती है। इस प्रकार समायोजनात्मक समस्याएं उत्पन्न हो जाती है। व्यावसायिक समायोजन व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक दोनो ही जीवन क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण होता है। मनोवैज्ञानिक कर्मचारियों को व्यावसायिक समायोजन के लिए सहयोग देते है।

(7) यदि कोई कर्मचारी एक व्यवसाय को अपनाता है और वहां प्रगति नहीं कर पा रहा है तो उसकी संतुष्टि और उत्पादकता घट जाएगी, उसका जीवन व्यापक रूप में प्रभावित होगा। अतः कर्मचारियों को व्यावसायिक प्रगति के लिए अपनी कार्यक्षमता और व्यक्तित्व दोनों को विकसित करना चाहिए। इस दिशा में आवश्यक सहयोग देकर मनोवैज्ञानिक अपनी भूमिका को सिद्ध करता है।

(8) औद्योगिक जगत में आज तकनीकी परिवर्तनों, आर्थिक उदारीकरण और मन्दी, भूमण्डलीकरण जैसे कारणों से प्रायः कर्मचारियों को छंटनी का शिकार होना पड़ता है। ऐसे कर्मचारियों का व्यावसायिक पुर्नवास की आवश्यकता होती है। आज व्यावसायिक पुर्नवास सेवाओं की महती आवश्यकता है। व्यक्तियों के लिए पुनः रोजगार खोजना मानसिक त्रासदी का अनुभव हो सकता है। व्यक्तियों को पूर्ण रूपेण पुनर्वासित होने के लिए मनोवैज्ञानिक विभिन्न रूपों में सहयोग दे सकता है। अनेक बार ऐसी अवस्था में मनोवैज्ञानिक को छंटनीशुदा कर्मचारी के पूरे परिवार के साथ संबंध स्थापित करके सभी का सहयोग अर्जित करके, परिवार को आर्थिक स्त्रोत की खोज करने के लिए सक्षम बनाने के अतिरिक्त उनके पारिवारिक समायोजन को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए भी सहयोग देने की भूमिका का निर्वहन करना होता है।

अपनी प्रगति की जांच कीजिए

- व्यवसाय में समायोजन किस प्रकार करते हैं?
- व्यावसायिक समायोजन के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
- व्यावसायिक निर्देशन में मनोवैज्ञानिकों की भूमिका का वर्णन कीजिए।

इकाई 3
समायोजन

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 समायोजन
3.3 समायोजनात्मक प्रक्रिया के घटक
3.4 समायोजन के विविध क्षेत्र
    3.4.1 व्यक्तिगत समायोजन
        3.4.1.1 शारीरिक विकास और स्वास्थ्य संबंधी समायोजन
        3.4 1.2 मानसिक विकास और स्वास्थ्य समायोजन
        3.4.1.3 संवेगात्मक समायोजन
        3.4.1.4 लैंगिक समायोजन
        3.4.1.5 व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित समायोजन
    3.4.2 सामाजिक समायोजन
        3.4.2.1 घर - परिवार से समायोजन
        3.4.2.2 मित्र और संबंधियों से समायोजन
        3.4.2.3 पड़ोसियों तथा समुदायों के अन्य सदस्यों से समायोजन
    3.4.3 व्यावसायिक समायोजन
3.5 एक भली भांति समायोजित व्यक्ति की विशेषताएं
3.6 कुसमायोजन
3.7 व्यक्तिगत निर्देशन
3.8 समायोजन की प्रक्रिया में विद्यालय और शिक्षकों की भूमिका

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत अध्येता :

- समायोजन की संकल्पना को समझ सकेंगे।
- समायोजनात्मक प्रक्रिया के घटकों की विवेचना कर सकेंगे।
- समायोजन के विविध क्षेत्र का विशेल्शन कर सकेंगे।
- एक भली भांति समायोजित व्यक्ति की विशेषताओं को पहचान सकेंगे।
- कुसमायोजन की संकल्पना को जान सकेंगे।

- व्यक्तिगत निर्देशन के महत्व को समझ सकेंगे।
- समायोजन की प्रक्रिया में विद्यालय और शिक्षकों की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

सतत परिवर्तनशील जीवन में व्यक्ति की आकांक्षाएं और इच्छाएं बदलती रहती है। व्यक्ति को अपनी आकांक्षाओं और समाज की अपेक्षाओं के साथ संतुलन बैठाना होता है। इस दौरान उसे पारस्परिक सहयोग और प्रतिस्पर्धा में भाग लेना पड़ता है। व्यक्ति के स्व और समाज की पारस्परिक संक्रिया में व्यक्ति के अनुकूलन और समायोजन की भूमिकाअपरिहार्य होती है। वर्तमान में सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक अपेक्षाओं व व्यावसायिक वृत्तियों में परिवर्तन आया है। सेवाक्षेत्र में विस्तार, काम-काजी महिलाओं की संख्या में वृद्धि, अध्ययन के साथ व्यवसाय करना, पारिवारिक संरचना में एकल परिवारों का विस्तार, मीडिया की दिनोदिन जीवन में बढ़ती पैठ और सफलता के लिए निरन्तर दबाव इसके कुछ संकेतक मात्र हैं। इसी तरह मूल्यों की प्रणाली में चतुर्दिक परिवर्तन आरहा है। जीवन के विविध क्षेत्रों-घर, परिवार, पास-पड़ोस, विद्यालय और कार्यालय में हम चुनौतीमूलक और समस्यापरक समस्याओं का अवलोकन कर सकते हैं। शिक्षा, व्यवसाय, मनोरंजन, विवाह, यौनिक एवं आध्यात्मिक जीवन में समायोजनात्मक समस्याएं अनेक रूपों में प्रकट हो रही हैं। बच्चों, किशोरों, वयस्कों सभी के जीवन में व्यक्तिगत एवं अन्तर्वैयक्तिक क्षेत्र में समायोजनात्मक समस्याओं के विविध रूप देखे जा सकते हैं।

3.2 समायोजन

समायोजन शब्द का काफी सामान्य और प्रचालित अर्थ है। इसके अर्थ को और अच्छी तरह स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं पर विचार करना अधिक उपयुक्त रहेगाः

एल.एस. शेफर के अनुसार समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि से सम्बन्धितपरिस्थियों में संतुलन बनाये रखता है। शेफर के द्वारा दी गई परिभाषा में समायोजन को मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अनुसार कोई बालक या व्यक्ति तभी तक समायोजित अनुभवकरता है जब तक उसकी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति से जुड़ी हुई उसकी कोशिशों तथा परिस्थितियों के बीच संतुलन बना रहे। जैसे ही यह संतुलन अस्थिर होता है अर्थातव्यक्ति को उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पहुँचती है वह कुसमायोजित होने लगता है।

गेट्स जेरासिल्ड एवं अन्य के अनुसार समायोजन एक सतत प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करता है कि उसे स्वयं तथा अपने वातावरण के बीच और अधिक संबंध स्थापित करने में मदद मिल सके।

गेटस् जेरसिल्ड तथा अन्य के द्वारा दी गई परिभाषा समायोजन को एक ऐसी स्थिति के रूप में देखती है जिसमें व्यक्ति की अपने वातावरण के साथ तालमेल रहता है। अगर व्यक्ति अपने वातावरण में ठीक तरह से संतुष्ट और सुखी नहीं रहता तो वह ऐसा करने के तरीकों, अपनी इच्छाओं तथा लक्ष्यों में, तब्दीली कर लेता है। अगर वह यह परिवर्तन कर अपने और अपने वातावरण के बीचे खट-पट नहीं होने देता तो उसे समायोजित कहा जाता है और अगर ऐसा करने में असफल होता है तो उसके कदम कुसमायोजन की ओर बढ़ने लगते हैं। वातावरण संबंधी स्थितियाँएक जैसी नहीं रहतीं, उनमें बदलाव आता रहता है और इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने आप में भी आवश्यक परिवर्तन लाता रहे। जो इस प्रकार के परिवर्तन लाने में जितनी अच्छी तरह सक्षम होता है वह उतना ही समायोजन प्रक्रिया में कुशल जाना जाता है और सही समायोजन ही उसके संतुष्टि और सफलता की ओर ले जाता है। जिसमें यह समायोजन कला है वही सुखी रह सकता है।

वोनहेलर के अनुसार, '' हम समायोजन शब्द को अपने आपको मनोवैज्ञानिक रूप से जीवित रखने के लिए वैसे ही प्रयोग में ला सकते हैं जैसे कि जीवशासी अनुकूलन शब्द का प्रयोग किसी जीव को शारीरिक या भौतिक दृष्टि से जीवित रखने के लिए करते हैं।"

बोनहेलर की परिभाषा का स्रोत डार्विन का विकासवाद है। डार्विन इस सिद्धांत के अनुसार सभी प्राणी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करते रहते है। उनमें से जिन प्राणियों में बदलती परिस्थितियों में अपने आपको बदलने या अनुकूल की ज्यादा क्षमता होती है उसी रूप में जब उन्हें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने अस्तित्व की रक्षा करनी होती है तो वह मनोवैज्ञानिक रूप से उतना स्वस्थ एवं सबल पाया जाता है। जीवन में संतुष्टि और आनंद प्राप्तिका मार्ग समायोजन से होकर गुजरता है।

समायोजन का अर्थ होता है कि जीवन की आवश्यकताओं मांगों से अपनी शक्ति ओर सामर्थ्य के संदर्भ में अनुकूलन करके चलना। अतः जो इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुकूलन में जितना समर्थ है वह उतना ही अच्छी तरह अपनी संघर्षपूर्ण जिंदगी को जी सकता है। इस प्रकार उपरात्त तीनों परिभाषाएँ अपने ढ़ंग से समायोजन के अर्थ उसके प्रयोजन के अर्थ उसके प्रयोजन तथा विशेषताओं को प्रकट करने का प्रयत्न करती हैं।

इन तीनों परिभाषाओं के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

- समायोजन एक प्रक्रिया है, एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा सुखी एवं संतोषप्रद जीवनयापन की राह पकड़ी जा सकती है।
- समायोजन हमें मनोवैज्ञानिक रूप से अच्छी तरह जीने के लिए उसी रूप में आवश्यक है जैसे कि बदलते मौसम या हालत में शरीर को जिन्दा रखने के लिए वस्त्रों, खान-पान, रहन में परिवर्तन लाकर अनूकूलन करने की प्रक्रिया।।
- समायोजन से हमें अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं को पूरा करने संबंधी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं में संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है। अगर हमारे पास ज्यादा क्षमता और योग्यता होती तो हम अपनी आवश्यकताओं की सीमा बढ़ाते जाते हैं

और अगर कम होती है तो हम अपने लक्ष्य की ऊँचाई या आवश्यकताओं की सीमा में कमी कर देते हैं।

- समायोजन संबंधी गुण, परिस्थितियों के अनुसार हमें अपने आपको ढालने में पूरी मदद करता है। समायोजन के द्वारा एक ओर तो हम अपने आपको बदलती परिस्थितयों के अनुसार बदलने का प्रयत्न करते हैं तो दूसरी ओर समायोजन हमें ऐसी शक्ति और सामर्थ्य भी देता है कि हम परिस्थितियों को ही बदल डालें। समायोजन के लिए जहाँ अपने को बदलकर संतुलन बनाया जा सकता है अर्थात दूसरे शब्दों से समझौता किया जा सकता है वहाँ ऐसा साहस भी किया जा सकता है कि परिस्थितियों को ही बदल कर अपने अनुकूल या इच्छा अनुसार कर लिया जाए।

1- समायोजन की संकल्पना को समझाइए।
2- एक शिक्षक के रूप में आप समायोजन की व्याख्या कैसे करेंगे ?

3.3 समायोजनात्मक प्रक्रिया के घटक

समायोजनात्मक प्रक्रिया के अनेक घटक होते हैं। व्यक्ति की आवश्यकताओं को समायोजनात्मक प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु माना जाता है। आवश्यकताओं में जैविक एवं मनोसामाजिक दोनों प्रकार की आवश्यकताएं सम्मिलित होती हैं। दूसरा घटक परिवेश की विशेषताओं को माना जाता है। परिवेश की विशेषताएं आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो सकती है या बाधक हो सकती है। यदि परिवेशीय परिस्थितियां व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुकूल होती है तो समायोजन की दशा का निर्माण सरलतापूर्वक हो जाता है। जब परिवेश की देय परिस्थितियां आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक होती है तब व्यक्ति को विभिन्न विकल्पों की तुलना का कार्य करना पड़ता है। उसे यह निर्धारिण करना होता है कि वह अपनी आवश्यकता और व्यक्तित्व को प्रभावित करेगा (या परिवर्तित करेगा) या परिवेशीय परिस्थितियों को अपनी नियंत्रणात्मक सामर्थ्य के माध्यम से परिवर्तित करके अपने अनुकूल बना लेना। व्यक्ति का व्यक्तित्व, व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक क्षमताएं और विशेषताएं समायोजनात्मक प्रक्रिया में उपकरण की भांति है। सरल या जटिल दोनों ही परिस्थितियों में लक्ष्य की प्राप्ति और सन्तुलन की स्थापना इस उपकरण की सहायता से ही संभव हो पाती है।

समायोजन वस्तुतः समायोजनात्मक प्रक्रिया के उपर्युक्त तीन घटकों के मध्य संतुलन स्थापित करने की क्रिया है। जिन व्यवहार प्रणालियों द्वारा समायोजनात्मक संतुलन स्थापित होना संभव होता है उन्हें समायोजनात्मक प्रतिक्रियाएं या समायोजनात्मक व्यवहार कहते हैं। समायोजनात्मक प्रक्रिया का आरम्भ व्यक्ति की आवश्यकताओं के सक्रियकरण के साथ होता है। आवश्यकताओं की उत्पत्ति होने पर व्यक्ति अपनी आदत प्रणाली में से अनुक्रमिक आधार पर बहुधा प्रयुक्त होने वाली एवं वरीयता में प्रथम स्थान पर अवस्थिति अनुक्रिया के माध्यम से लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जब व्यक्ति के प्राथमिक प्रयास आवश्यकताओं से संबंधित लक्ष्य को प्राप्त करने मे सफल हो जाते हैं तब समायोजन की सहज स्थापना हो जाती है। किन्तु जब प्राथमिक प्रयत्न विफल हो जाते हैं। तब व्यक्ति को समायोजनात्मक

प्रक्रिया के तीन घटकों के मध्य सन्तुलन की स्थापना हो जाय। अनेक बार व्यक्ति के विभिन्न प्रयत्नों के पश्चात भी समायोजन स्थापित नहीं हो पाता है।

प्रियंका और अंकिता दो जुड़वा बहनें हैं। वे लगभग एक जैसे ही सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में वयस्क हो रही हैं। प्रियंका एक खुशमिजाज लड़की है। वह विद्यालय और विद्यालय के बाहर दोस्त बनाना, अन्य लोगों के साथ घुलमिलकर रहना पसंद करती है। उसके साथी और अध्यापक उसे पसंद करते हैं। अंकिता एक मूडी लड़की है। वह अकेले रहना पसंद करती है। वह अपने शिक्षकों और हम उम्र साथियों के प्रति अभद्र व्यवहार करती है। उसकी कोई रूचि और शौक भी नहीं है।
विचार कीजिए कि

- उपर्युक्त दोनों पात्रों के व्यवहारों में क्या अंतर है?
- इनमें से किसे आप समायोजित और किसे असमायोजित मानते हैं?
- किसी एक को समायोजित और दूसरे को कुसमायोजित मानने का आधार क्या है?

3.4 समायोजन के विविध क्षेत्र

सब प्रकार से समायोजित व्यक्ति वह होता है जो पहले अपने आप से ही संतुष्ट और समायोजित हो तथा दूसरे अपने चारों ओर फैले वातावरण या परिवेश से उसका सही तालमेल हो। इस दृष्टि से समायोजन के क्षेत्रों को व्यक्ति तथा उसके वातावरण में ही निहित माना जाना चाहिए। एक व्यक्ति की दुनिया जहां उसके अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं के इर्द गिर्द घूमती है वहां उसे अपने सामाजिक परिवेश तथा काम - काज के क्षेत्रों में भी समायोजित होने की आवश्यकता पडती है। समायोजन संबंधी उसकी इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी भी व्यक्ति के समायोजन क्षेत्रों को तीन मुख्य भागों - व्यक्तिगत, सामाजिक तथा व्यावसायिक में बांटकर समझने का प्रयत्न कर सकते हैं।

3.4.1 व्यक्तिगत समायोजन

व्यक्ति अपने आप से कितना समायोजित है इस बात का निर्णय उसके इस क्षेत्र के समायोजन स्तर से ही ज्ञात होता है। कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र में किस स्तर तक समायोजित है इस बात पर निर्भर करता है कि उस क्षेत्र से संबंधित व्यक्ति विशेषकी आवश्यकतायें कितनी सीमा तक पूरी होती हैं अथवा उनकें पूरी होने की संभावना व आशा से वह किसी सीमा तक संतुष्ट रहता है। जब तक ये आवश्यकताएं रहती है या इनकी पूर्ति की आशा उसे रहती है व्यक्ति समायोजित रहता है विपरित अवस्था में वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि व्यकित को अपने आप से समायोजित रखने या संतुष्ट रखने से संबंधित विभिन्न क्षेत्र कौन्-कौन से है जिनके उपर उसका व्यक्तिगत समायोजन निर्भर करता है। प्रमुख रूप से यही उसके व्यक्तित्व के विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं में निहित समायोजन को ही इसका आधार बनाया जा सकता है।

1. शारीरिक विकास और स्वास्थ्य संबंधी समायोजन

यह व्यक्तिगत समायोजन का एक प्रमुख पहलु हो सकता है। हर आयु स्तर पर कितना शारीरिक विकास हो इसका एक निर्धारित मापदंड होता है। लंबाई, भार शरीर के अंगों का विकास अगर सामान्य स्तर को छूता रहे तो व्यक्ति शारीरिक रूप से अपने आपको समायेजित अनुभव करता है। अपने रंग-रूप शरीर की बनावट आदि से भी उसे संतुष्टि का अनुभव होना चाहिए। उसका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहे तथा उससे वह संतुष्टि अनुभव करता रहे, यह बात भी उसके स्वास्थ्य संबंधी समयोजन का उचित आधार बनती है। इस तरह व्यक्ति की अपनी शारीरिक संरचना, उसके विकास, शारीरिक अगों तथा संस्थानों की कार्यप्रणाली तथा सामान्य स्वास्थ्य से संतुष्टि का अनुभव करने वाले बातें शारीरिक विकास और स्वास्थ्य संबंधी समायोजन के क्षेत्र में आती है और इस प्रकार का समायोजन उसे अपने आपसे संतुष्टि या समायोजित होने में पूरी मदद करता है।

2. मानसिक विकास और स्वास्थ्य समायोजन

व्यक्तिगत समायोजन का दूसरा बड़ा पहलु व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित है। हमारा मानसिक विकास किस स्तर का है और उससे हम कितनी सीमा तक सुतुष्टि का अनुभव करतेहैं यहाँ बात हमारे व्यक्तिगत समायोजन का एक प्रमुख आधार सिद्ध होती है। इसी तरह अच्छे मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति भी हमें व्यक्तिगत रूप से भली - भांति समायोजित बनाने में अत्यधित में सहयोगी होती है। चिंता क्लेश, निराशाओं, कुण्ठाओं, दबाव तथा तनाव का हमारे जीवन में क्या स्थान है हम उन्हें किस रूप में लेते है और उनसे किस प्रकार निपटते हैं यह सभी बातें हमारे मानसिक स्वास्थ्य के निर्णायक होती है और एक अच्छे मानसिक स्वास्थ्य का स्वामी ही अच्छे ढंग से व्यक्तिगत, सामाजिक और व्यावसायिक समायोजन कर सकता है। परन्तु अपने मानसिक तथा स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने में व्यक्ति की अपनी बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रहती है अतः इनसे संबंधित समायोजन व्यक्तिगत समायोजन के क्षेत्र में ही शामिल किया जाता है।

3. संवेगात्मक समायोजन

व्यक्ति के व्यक्तित्व और व्यवहार में संवेगों का बडा प्रमुख स्थान है। उचित समय पर उचित रूप से उचित संवेगों की अभिव्यक्ति व्यक्ति के समायोजन के लिए काफी आवश्यक है। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे संवेगात्मक रूप से अस्थिर तथा कुसमायोजित माने जाते हैं।

4. लैंगिक समायोजन

लैंगिक या यौन संबंधी आवश्यकता हमारी आवश्यकताओं में एक बड़ी आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति जब तक सामाजिक मान्यता प्राप्त तरीकों से ठीक प्रकार होती रहें, व्यक्ति समायोजित अनुभव करता है। इसकी पूर्ति असंतोष कुसमायोजन को जन्म देता है। विभिन्न अनुसंधानों ने इस संबंध में यही निष्कर्ष निकाला है कि व्यक्ति का समुचित लैंगिक विकास, यौन या काम के प्रति उचित दृष्टि कोण तथा उसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति एवं तृप्ति ही उसे अपने आप से तथा अपने परिवेश से ठीक प्रकार समायोजित रखती है।

5. व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित समायोजन

हमारे व्यक्तिगत समायोजन की परिधि में ऐसा समायोजन भी शामिल होता है जिनका संबंध हमारे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति से होता हैं। इन आवश्यकताओं में शारीरिक आवश्यकताओं के रूप में भूख, प्यास, नींद, विश्राम आदि आवश्यकताएं आती है। भौतिक आवश्यकताओं में भौतिक सुख - सुविधाओं को जुटाने तथा भोगने की बात आती है। सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यताओं में व प्यार पाने और देने, आत्म अभिव्यक्ति करने, दुसरों पर प्रमुख जमाने, आदर एवं सम्मान प्राप्त करने जैसी आवश्यकताएं आती हैं। इन सभी प्रकार की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हम शुरू से अपने प्रयत्न करते रहते हैं तथा मृत्युपर्यन्त यही प्रयत्न चलते रहते हैं। हमें अपने प्रयत्नों में कितनी सफलता मिलती है अथवा हम किस सीमा तक अपने इन प्रयत्नों और उनके परिणामों से संतुष्टि का अनुभव करते हैं उसी सीमा तक हम समायोजित रहते हैं। इस तरह व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूर्ति से संबंधित समायोजन हमारे व्यक्तिगत समायोजन के लिए एक काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

3.4.2 सामाजिक समायोजन

व्यक्ति को जिनता अपने आप से संतुष्ट तथा समायोजित होने की आवश्यकता होती है उतनी ही अपने सामाजिक परिवेश से जुडी हुई बातों तथा व्यक्तियों के साथ उचित तालमेल बनाये रखकर समायोजित रहने की होती है। उसे अपने परिवेश तथा उसमें उपलब्ध परिस्थितियों से भी संतुष्ट अनुभव करना चाहिए तभी ठीक तरह समायोजित रह सकता है। सामाजिक परिवेश का दायरा उसके घर-परिवार से शुरू होकर विश्व - बंधुत्व की सीमाओं को छूता है। मुख्य रूप से उस व्यक्ति से सामाजिक समायोजन में निम्न पहलुओं को शामिल किया जा सकता है

1. घर - परिवार से समायोजन

व्यक्ति को अपना घर, घर जैसा ही सुख -शांति एवं संतोष प्रदान करने वाला लगना चाहिए तथा उसे अपने परिवारों के सदस्यों के साथ उठना - बैठना रहना- सहना अच्छा लगना चाहिए। जिसे घर काटने दौड़ता हो ज्यादा समय घर के बाहर बिताना पसंद करे जिस घर के सदस्यों में आपसी वार्तालाप तक समाप्त हो जाये ऐसा घरेलू वातावरण व्यक्ति को कुसमायोजित ही करेगा। दूसरे इसके विपरीत एक - दूसरे को समझने वाले, स्नेह एवं प्यार से भरे सहयोगी वातावरण में प्रत्येक सदस्य को पूरी तरह तालमेल बिठाकर अपने और परिवार को आगे बढाने में समुचित सहायता मिलती है। ऐसे वातावरण में सभी सदस्यों की व्यक्तिगत तथा सामूहिक आवश्यकतायें ठीक तरह से होती रहती हैं और सभी लोग भली - भांति समायोजित रहते है- अतः जिस घर एवं परिवार के सदस्यों में पारस्पारिक सहयोग एवं तालमेल रहता है वहां व्यक्तियों के समायोजित रहने की संभावना भी ज्यादा रहती है।

2. मित्र और संबंधियों से समायोजन

सामाजिक दायरे की दूसरी कड़ी मित्र तथा सगे- संबंधियों को लेकर होती है। सामाजिक संबंधों को इन्हीं के सहारे जीवित रखा जाता है। सुखी जीवनयापन के लिए इनसे संपर्क सूत्र ठीक तरह कायम रखना भी आवश्यक होता है। जिंदगी की विषम परिस्थितियों में अपने ही काम आते हैं, अतः मित्रों में मित्रता बनी रहे और संबंधियों से संबंध, यह भी किसी व्यक्ति के लिए काफी आावश्यक होता है। हम

जिस रूप में अपने मित्रों तथा सगे संबंधियों से अपना तालमेल और संबंधों की डोर कायम रखते है उसी रूप में हम उनके साथ समायोजित होने में समर्थ रह सकते है और हमें इसके लिए सदैव ठीक दिशा में प्रयत्न करना चाहिए।

3. पड़ोसियों तथा समुदायों के अन्य सदस्यों से समायोजन

घर से बाहर निकल कर हम पड़ोस तथा समुदाय में आते हैं हमारी बहुत सी आवश्यकताओं की पूर्ति समुदाय के साथ उचित संप्रेषण,विनिमय तथा तालमेल द्वारा होती है। पड़ोस तथा समुदाय के साथ हमारा समायोजन हमें भौतिक,आर्थिक तथा भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करता है। हमारी बहुत सी सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी समाज के साथ हमारे संपर्क एवं तालमेल से होती है अतः पडोस तथा समुदाय के साथ हमारे बेहतर सामाजिक संबंध हमें सभी तरह से जीवन को अच्छी तरह जीने में पूरी तरह मदद करते सकते हैं। आवश्यकता इस बात है कि हम पड़ोसियों तथा समुदाय के साथ जीयों और जीने दो के सिद्धांत पर चलकर एक दूसरे के सुख दुख में भागीदार बनने की चेष्टा करें। बात बात में झगड़ा फसाद तथा तू तू मैं मैं में न फंसकर एक दूसरे की भावना तथा इच्छाओं का सम्मान करना सीखें। भाषा धर्म, जाति की अलगाववादी प्रवृत्तियों का त्याग कर सुख शांति से जीना सीखें। जिनसे सामाजिक संपर्क के धागे मजबूत हों तथा हमारे सामाजिक रूप से समायोजित होने की संभावना भी अधिक होती जाएं। स्पष्टतया उसी व्यक्ति को ही सामाजिक रूप से ठीक प्रकार से समायोजित हुआ कहा जाएगा। जो पास पड़ोस तथा समुदाय के सदस्यों के साथ अपने अच्छे सामाजिक संबंध कायम करता है तथा संतुष्ट रहता है हम सभी को इसी दिशा में प्रयत्न करते रहना चाहिए।

प्रश्न उठता है कि घर परिवार से लेकर मित्र, सगे संबंधियों, पड़ोसियों तथा समुदाय या समाज में रहने वाले व्यक्तियों तथा संपूर्ण सामाजिक परिवेश से समायोजित होने के लिए व्यक्ति को किस प्रकार अपने प्रयत्न करने चाहिए। इस दिशा में पहली बात तो यह है कि उसे सामाजिकता का पाठ सही ढंग से पढ़ना चाहिए तथा उसे सच्चाई से व्यवहार में लाना चाहिए उसमें सभी सामाजिक गुणों का समावेश होना चाहिए तथा अधिकार के स्थान पर कर्तव्यों के पालन की अधिक इच्छा होनी चाहिए। समाज के नियम उसकी आचार संहिता, समाज तथा विशेषकर अपने समुदाय की विशेष अभिवृत्तियों, संस्कारों तथा रीति रिवाजों से उसे परिचित होना चाहिए तथा उनका एक उचित सीमा तक पर्याप्त सम्मान करना चाहिए। ऐसी अवस्था में ही उसे अपने सामाजिक परिवेश में ठीक प्रकार समायोजित होने में उचित सहायता मिल सकती है।

3.4.3 व्यावसायिक समायोजन

रोटी रोजी कमाना हम सभी के लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इसी में हमें अपनी व्यक्तिगत तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित साधन प्राप्त होते है। विद्यालय जीवन हो या मां बाप तथा घर परिवार द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण सभी की राह में हमें किसी न किसी व्यवसाय को अपनाने का अवसर प्रदान करती है ओर आगे जाकर यह व्यवसाय हमें किस रूप में व्यावसायिक संतुष्टि प्रदान कर हमारी आशाओं तथा आकांक्षाओं की पूर्ति करता है उसी पर अधिकतर हमारा व्यावसायिक समायोजन निर्भर करता है। हम लोग अपने प्रयत्नों तथा मिलने वाले अवसरों के फलस्वरूप

तरह तरह के व्यवसाय अपनाते है तथा अपने अपने ढंग से कार्य करते हुए उनसे समायोजित होने का प्रयत्न करते है। जितने हम अपने व्यवसाय में समायोजित रहते है उतना ही हमें लाभ एवं सहयोग जीवन के अन्य क्षेत्रों में पूरी तरह समायाजित होने मे मिलता है। यह बात दूसरी तरफ से लागू होती है। जितने हम समायोजन के अन्य क्षेत्रों व्यक्तिगत या सामाजिक होने में अधिक समायोजित होते हैं उतनी ही सहायता हमें व्यावसायिक रूप से समायोजित होने में मिलती है। अब प्रश्न यह उठता है कि व्यावसायिक रूप से समायोजित व्यक्ति किसे कहा जाए। इस संदर्भ में किए गए विभिन्न अनुसंधानों द्वारा सामान्यरूप से जो परिणाम सामने आये हैं उनमें व्यावसायिक रूप से समायोजित होने वाले व्यक्तियों में अधिकतर निम्न मुख्य बातें दिखाई देती हैः

(1) अपने व्यवसाय के चुनाव से वे संतुष्टि अनुभव करते हैं वह यह नही कहते कि उनकी तो किस्मत ही खराब थी या उन्होने मजबूरी में अपने इस व्यवसाय का चुनाव किया है।

(2) अपने व्यवसाय से संबंधित कार्यों को करने में उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता है तथा इन्हे करने के बाद वे प्रायः संतुष्टि का अनुभव करते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक संतुष्टि की भावना इन व्यक्तियों में अच्छी तरह पायी जाती है।

(3) अपने व्यवसाय और काम काज की दुनिया से संबंधित विभिन्न परिस्थितियों से संतुष्ट नजर आते हैं। काम काज संबंधी उपकारण, उठने बैठने, तथा काम करने की जगह तथा उपलब्ध सुविधाओं आदि के अभाव का वे रोना नहीं रोते या उन्हें लेकर वे परेशान नहीं होते हैं।

(4) अपने व्यावसायिक साथियों तथा अधिकारियों से उनका ठीक प्रकार समायोजन रहता है। पारस्परिक संबंधों को निभाना और उचित तालमेल कर अपने व्यावसायिक कार्यों में कोई ढील न आने देना उनके व्यक्तित्व की एक अच्छी विशेषता होती है।

(5) उनमें अपने व्यवसाय के प्रति पूरी निष्ठा होती है तथा उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोंण होता है वे अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय अपनाने की बात नही सोचते रहते। वह यह भावना रखते हैं कि व्यवसाय में ऐसा बहुत कुछ है जिससे वे अपने आपको तथा समाज को प्रगति के मार्ग पर ले जा सकते हैं।

(6) उनका व्यवसाय उनको पदोन्नती के समुचित अवसर प्रदान करता है कुछ कारणों से ऐसा न होने पर वे अधिक विचलित नहीं होते तथा ऐसा अनुभव नही करते कि स्थानान्तरण या प्रमोशन को लेकर उन्हे तंग किया जा रहा है अथवा भेदभाव हो रहा है।

(7) अपने व्यवसाय की कामकाज की बातों में वे पर्याप्त सुधार लाने में पूरा विश्वास रखते हैं उनमें सृजनात्मकता के तत्व भी उपयुक्त मात्रा में पाये जाते हैं जिसका प्रमाण वे यदा कदा देते रहते हैं।

(8) वे अपने व्यवसाय से आर्थिक दृष्टि से भी समुचित रूप से संतुष्टि अनुभव करते है वे दूसरे व्यवसायों से जिनमें अधिक पैसे या सुविधाएं मिलती हैं अपने व्यवसाय की तुलना कर अपने मन मेंकिसी प्रकार के हीन या विरोधी भावना उत्पन्न होने देते।

(9) अपने व्यवसाय की गरिमा तथा प्रतिष्ठा बनाए रखने का वे समुचित प्रयत्न करते है तथा इस कार्य में अपने साथियों तथा अधिकारियों का पूरा साथ देते है।

1. अपने विद्यार्थियों के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए उनकी समायोजनात्मक समस्याओं का वर्णन

कीजिये।

2. केशिमा पार्क में खेल रही थी। अचानक वह झूले से गिर पड़ी। उसके अभिभावक उसे चिकित्सक के यहां लेकर गए। जांच के बाद ज्ञात हुआ कि उसके पैर में मोच आ गयी है। चिकित्सक ने सलाह दी कि उसे अगले एक माह तक आराम कर होगा। इस दौरान वह विद्यालय और टयूशन के लिए भी नहीं जा सकेगी। यह सुनने पर केशिमा जिद्द करने लगी कि उसे विद्यालय जाना है। माता-पिता के समझाने पर भी वह नहीं मानी। थोड़ी देर में वह जोर-जोर से रोने लगी और कहने लगी कि मैं अब कैसे 'बेस्ट स्टूडेंट बन पाऊँगी? क्यांकि मेरी अटेन्डेंस कम हो जाएगी।

मान लीजिए कि आप केशिमा के शिक्षक हैं। आप केशिमा को क्या सलाह देगें? आप उसके माता-पिता को क्या सलाह देगें?

3.5 एक भली भांति समायोजित व्यक्ति की विशेषताएं

एक भली भांति समायोजित कहे जाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व व व्यवहार में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं।

1. शारीरिक दृष्टि से समायोजित

शारीरिक रूप से व्यक्ति अगर स्वस्थ हो तथा उसका शारीरिक विकास, भार उंचाई, अंग, प्रत्यंगों का विकास आदि अपनी आयु के अनुसार सामान्य ढंग से चलता रहे तो उसे अपने आप से तथा अपने वातावरण के साथ समायोजन करने में बहुत सुविधा होती है। समायोजित कहे जाने वाले बालक में शारीरिक स्वास्थ्य एवं विकास संबंधी विशेषता पायी जाती है।

2. संवेगात्मक रूप से समायोजित

एक समायोजित व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार काफी संतुलित होता है वह अपने संवेगों की उचित अभिव्यक्ति को उचित ढंग से सीख लेता है। किस तरह कितनी मात्रा में किस प्रकार के संवेगों की अभिव्यक्ति की जाए, इस प्रकार की व्यवहार कुशलता तथा संवेगात्मक नियंत्रण की उपस्थिति उसमें पायी जाती है।

3. अपनी अच्छाईयों तथा कमजोरियों का ज्ञान

भली- भांति समायोजित व्यक्ति यह जानता है कि उसकी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का क्या स्तर है। किन बातों में वह आगे है तथा किन में पीछे। अपने आपको इस प्रकार तौलकर ही वह आगे बढता है और इसलिए न तो वह जो नही कर सकता था उसे करके निराश होता है और न जो वह कर सकता था उसे न करके पछताता रहता है।

4. अपने आपको पर्याप्त सम्मान देना तथा दूसरों को भी सम्मान देना

भली भांति समायोजित व्यक्ति जो कुछ भी अपने व्यक्तित्व में होता है उससे संतुष्ट रहने का प्रयत्न करता है। तथा अपने आत्म का भी सम्मान करता है। जैसा कि रंग रूप, कद काठी, योग्यताएं तथा क्षमताएं उसके पास होती है उन्हीं को अपनी शक्ति मानकर उनकी कद्र करता है तथा जो कुछ भी नही है उसकी दूसरों से तुलना कर व्यर्थ में रोना नही रोता और न इसके लिए अकारण ही परेशान होता है। अपने आत्म का सम्मान करते हुए दूसरों को पर्याप्त सम्मान देने का प्रयत्न करता है।

5. सामाजिक रूप से समायोजित

एक भली भांति समायोजित व्यक्ति सामाजिक विकास तथा सामाजिकता की दृष्टि से अपनी आयु के अनुसार ठीक प्रगति करता है। दूसरे बच्चों के साथ खेलने, मित्रता बढ़ाने तथा सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने में उसकी रूचि होती है। धीरे -धीरे वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों को समझने लगता है अपने सामाजिक परिवेश को अच्छी तरह पहचानने की क्षमता आ जाती है तथा अच्छा सामाजिक जीवन बिताने से संबंधित गुणों और कुशलताओं के अर्जन की ओर वह कदम बढ़ाने लगता है।

6. महत्वाकांक्षा का उचित दर

जीवन में बहुत कुछ पाना तो सभी चाहते है परंतु समझदारी इसी में होती है अपनी महत्वकांक्षाओं को अपनी योग्यताओं, सीमाओं तथा परीस्थितियों के संदर्भ में ही संतुलित करके रखा जाए। एक समायोजित व्यक्ति इसी प्रकार का संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करता है और इसलिए अनावश्यक, चिंता, परेशानी तथा निराशा के शिकार होने से बच जाता है।

7. मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति

मूलभूत शारीरिक मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी व्यक्ति के समायोजन के लिए काफी आवश्यक मानी जाती है। अगर किसी कारण किसी आवश्यकता की पूर्ति में कोई कमी रहती भी है तो उसकी चुभन को दूसरे वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति से पूरा किया जाता रहता है। गरीबी तथा अभावों की चुभन को स्नेह प्यार के मरहम तथा सुरक्षा के कवच से कम किया जा सकता है। भली भांति समायोजित व्यक्ति के साथ यही होता है या तो उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में कोई बाधा नही आती और अगर आती भी है तो उसकी उन्हे भविष्य में पूरा होने की आशा बंधी रहती है।

8. आलोचक तथा दोष निकालने की प्रकृति का नहीं होना

एक समायोजित व्यक्ति स्वभाव से दूसरों में उनकी अच्छाइयों के ही दर्शन करता है उनकी बुराइयों तथा दोषों को ढूंढकर उनका प्रचार नही करता।

9. व्यवहार का लचीलापन

समायोजित व्यक्ति का रूख व्यवहार तथा दृष्टिकोंण अड़ियल टट्टू की तरह नही होता। जिस तरह का माहौल या परिस्थितियां होती है उन्ही के अनुसार अपने स्वभाव तथा कार्यशैली में परिवर्तन लाने की पर्याप्त क्षमता पायी जाती है।

10.अपने वातावरण संबंधी हालातों से संतुष्टि

अपने घर, परिवार पास-पड़ोस,विद्यालय में उसे जो भी परिस्थितियां और माहौल, उसके रहन-सहन, लालन-पालन,खेल कूद, मनोरंजन,तथा शिक्षा के लिए मिलता है उसमें वह संतुष्टि का अनुभव करता है तथा बिना वजह किसी अभाव का रोना नही रोते रहता जो भी काम वह जहां भी करता है और जिनके संपर्क में आता है उससे कोई भी शिकायत या गिले शिकवे करते नही पाया जाता।

11.हालातों से संघर्ष करने की क्षमता

अनुकुल परिस्थितियों में तो सभी जी लेते है और संतुष्टि का अनुभव सभी कर लेते है परीक्षा तो विपरीत परिस्थितियों में ही होती है इस प्रकार की परिस्थितियों से समझौता करने के लिए पर्याप्त धैर्य रखने के साथ-साथ समायोजित व्यक्ति में भी यह विशेषता पाई जाती है कि वह हालातों का मुकाबला कर उन्हें

अपने अनुकुल बना डालने के लिए भी कमर कस कर खड़ा हो जाए। उसकी संकल्प तथा इच्छा शक्ति प्रबल होती है अतः वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विचलित नही होता।

1। विचार कीजिये की किस प्रकार से आप अपने विद्यार्थियों में उपर्युक्त विशेषताओं का पोषण कर सकते हैं?

3.6 कुसमायोजन

जब समायोजन स्थापित करने के लिए, व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी क्षमताओं और विशेषताओं एवं परिस्थितियों के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यवहार अंततः विफल हो जाते हैं तब कुण्ठा की दशा उत्पन्न होती है। कुण्ठा की उत्पत्ति का कारण समायोजनात्मक प्रक्रिया के तीनों घटकों में से कहीं भी स्थित हो सकता है- आवश्यकताओं की तीव्रता, आवश्यकताओं का द्वन्द्व, या व्यक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं में कोई कमियां, जैसे बुद्धि न्यूनता, आकर्षक न होना, अपने बारे में और अपनी सामर्थयों के बारे में प्रत्यक्षण का उपयुक्त न होना, अभिवृत्तियों का उपयुक्त न होना आदि अथवा, परिवेश में गंभीर बाधाओं की उपस्थिति, जैसे कानूनी बाधा, व्यक्ति के लिए अस्वीकार्य परम्पराएं, मूल्य या कार्य, दुर्घटना, आपदा आदि।

कुसमायोजन व्यक्ति विशेष की वह अवस्था या स्थिति होती है जिसमें वह यह अनुभव करता है कि उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही हैं और ऐसा होने की आगे भी कोई आशा नहीं है वह निश्चित रूप से अपने आप से तथा अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में लगभग असफल ही रहा है। अपनी इस समायोजन संबंधी विफलता के कारण इस प्रकार एक कुसमायोजित व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्यवहार तथा समायोजन संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होकर अपने तथा दूसरों के विकास या प्रगति में सदैव बाधा बना हुआ ही नजर आता है।

3.6.1 कुसमायोजन के कारण

एक व्यक्ति उस समय तक या उतनी ही सीमा तक पूरी तरह समायोजित रहता है जब तक कि उसकी मूलभूत आवश्यकताओं (शारीरिक तथा सामाजिक -मनोवैज्ञानिक) की उसकी अपनी दृष्टि से पूर्ति होती रहे अथवा उसे उनके पूरे होने की आशा बनी रहे। जैसे ही उसे यह आभास होने लगता है कि उसकी इन आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा आ रही है वह निराशा होकर कुसमायोजन का शिकार बन जाता है। इस तरह व्यक्ति के अपने आप से तथा अपने वातावरण से कुसमायोजित होने संबंधी कारणों के तार उसकी अपनी वैयक्तिकता तथा वातावरण संबंधी प्रभावों से जुड़े रहते हैं।

वैयक्तिक कारण

इस प्रकार के कारणों में हम निम्न का उल्लेख कर सकते हैः

वंशानुगत कारण

बालक के कुसमायोजन से ग्रस्त होने के पीछे कुछ ऐसे कारण भी हो सकते है जिनके लिए वंशानुक्रम संबंधी कारक उत्तरदायी हों। वह वंशानुक्रम की विरासत के रूप में ऐसे दोषपूर्ण एवं विकारग्रस्तमानसिक तंत्र, शाररिक ढांचे, शारीरिक संरचना संबंधी दोष अक्षमताओं, कुरूपता तथा अपंगता को लेकर पैदा हो

सकता है जो आगे चलकर उसमें विभिन्न प्रकार की हीनता, निष्क्रियता नैराश्य भावनाओं को जन्म देकर उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में विविध प्रकार की बाधाओं को खड़ी करती रहें।

शारीरिक कारण

कुसमायोजन के बहुत से मामलों के पीछे शारीरिक कारण पाये जाते है। शाररिक दुर्बलता, शारीरिक अपंगता या अक्षमता, शारीरिक अस्वस्थता, असाध्य बीमारियों से ग्रस्त और परेशानी व्यक्ति कुसमायोजन का शिकार हो सकता है। कारण स्पष्ट है कि व्यक्ति को शारीरिक दृष्टि से चैन नही मिलता तो ऐसी परेशानी और विषम परिस्थितियों उसे अपने आप से तथा अपने वातावरण से ठीक तरह समायोजित होने में एक बड़ी बाधा बन जाती है। उसमें हीनता और निराशा के भाव घर करने लगते हैं फिर उसके पैर धीरे-धीरे कुसमायोजन की ओर पडने लगते है।

व्यक्ति की अपनी प्रकृति और स्वभाव से संबंधित कारण

कुछ व्यक्तियों की अपनी प्रकृति और स्वभाव ही ऐसा होता है कि जिसकी वजह से वे अपने आप से तथा अपने वातावरण के साथ पटरी बिठाने में प्रायः असफल ही रहते हैं। रहते है। इस प्रकार के कुछ कारण निम्न हो सकते हैं:-

- जीवन के ऐसे लक्ष्य, उद्देश्य एवं आदर्श जो वास्तविकता से काफी परे हों।
- सामाजिक परिपक्वता एवं समायोजन का अभाव, संवेगात्मक परिपक्वता का अभाव तथा संवेगों पर उचित नियंत्रण रखने संबंधी अक्षमता।
- आकांक्षा तथा महत्वाकांक्षा का उचित स्तर बनाये रखने संबंधी असफलता।
- विपरीत इच्छाओं का शिकार होना तथा विविध प्रकार के अन्त: द्वन्द्वों से ग्रस्त रहना
- निराशाजन्य भावों और कुण्ठाओं के शिकार रहना।

वातावरणजन्य कारण

बहुत सी कुसमायोजन संबंधी समस्याओं के पीछें प्रायः वातावरण संबंधी कारकों का ही अधिक सक्रिय योगदान पाया जाता हैं। शायद इसके पीछे यही बात काम करती हुई पाई जाती है कि क्योंकि कुसमायोजन की समस्या मूलरूप से व्यवहारजन्य समस्या है और व्यवहार को बनाने एवं बिगाड़ने में वातावरण की शाक्तियों को ही कुसमायोजन को जन्म देने तथा पल्लवित एवं पोषित करने का एक बड़ा कारण माना जाना चाहिए।

जब से बालक की जीवनलीला अपनी माता के गर्भ में शुरू होती है तब से लेकर मृत्युपर्यन्त वह वातावरण की शक्तियों का ही शिकार रहता है। ऐसे में अगर उसके हिस्से दोषपूर्ण एवं प्रतिकूल वातावरणजन्य परिस्थितियां जो कुसमायोजन के लिए अधिक उत्तरदायी मानी जा सकती है, उदाहारण रूप में निम्न हो सकती हैः

- माता-पिता, अभिभावकों, परिजनों, समाज के अन्य सम्मानित सदस्यों तथा से बडे बालकों का बालक के प्रति अनुचित व्यवहार

- o असंतोषजनक तथा दोषपूर्ण पारिवारिक वातावरण जिसके पीछे माँ - बाप के आपसी झगड़े, परिवार के व्यक्तियों का असामाजिक एवं अपराधी चरित्र, मां- बाप के बीच संबंध विच्छेद, सौतेली मां या बाप से मिलने वाला अनुचित व्यवहार आदि विविध कारकों का योगदान हो सकता है।
- o पास-पडोस, मोहल्ले, समुदाय तथा समाज में व्याप्त ऐसी परिस्थितियां तथा दोषपूर्ण वातावरण जिनके परिणामस्वरूप बालकों में अनुचित एवं असामाजिक आदतों को पनपने का अवसर मिले या उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में ऐसी बाधाएं खड़ी हो जाएं कि उनके पैर कुसमायोजन की ओर बढ़ने लगे।
- o विद्यालय में मिलने वाला दोषपूर्ण वातावरण एवं विषम परिस्थितियां जिनमें अध्यापकों को बालकों के साथ अनुचित व्यवहार, साथी विद्यार्थियों के साथ पटरी न बैठना, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम तथा पढ़ने-पढ़ानें की अरूचिपूर्ण रवैया आदि बातें शामिल हो सकती हैं।

3.7 व्यक्तिगत निर्देशन

प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से निर्देशन की आवश्यकता होती है। इसके माध्यम से वह अपने विचारों, अपेक्षाओं और समस्याओं से निपटने में समर्थ होता है। व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति को अपने परिस्थितियों का यथार्थपरक मूल्यांकन करते हुए अपनी सकारात्मक भूमिका सुनिश्चित करने में सहयोग करता है। सी.एच मिलर के अनुसार ''व्यक्तिगत निर्देशन को व्यक्ति को परिस्थिति में भली प्रकार बैठने के लिए सहयोग के रूप में देखा जा सकता है।" बर्की एवं मुखोपाध्याय के अनुसार ''व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति को अपनी सांवेगिक समस्याओं के समाधान तथा संवेगों को नियन्त्रित करने के लिए दिया गया सहयोग है।"

शिक्षा के क्षेत्र में यह बात स्वीकार की जा रही है कि शिक्षक शिक्षण कार्य के साथ ही विद्यार्थियों के वैयक्तिक परामर्श और निर्देशन का एक मुख्य अभिकर्ता है। शिक्षक को अनेक प्रकार की व्यक्तिगत समस्याओं के साथ उचित निपटारे (व्यवहार) के लिए पेशेवर ज्ञान और सामर्थ्य की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति को समायोजनात्मक प्रक्रिया के घटकों को प्रभावित करने की दिशा में सहयोग प्रदान किया जाता है। यह कार्य विभिन्न रूपों में किया जा सकता है:

- व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्ति को आवश्यकताओं के उपयुक्त रूप के निर्धारण की दिशा में सहयोग प्रदान किया जाता है। यदि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के स्तर को अपनी परिस्थितियों तथा अपनी सामर्थ्य एवं विशेषताओं के अनुरूप निर्धारित कर पाता है तो समायोजन की स्थापना हो पाती है।
- व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को समझने, अपनी कमियों को स्वीकार करने, तथा अपनी क्षमताओं और विशेषताओं को पहचानने के लिए सहायता देता है। यदि व्यक्ति आवश्यक नई अनुक्रिया प्रणालियों का अधिगम कर पाता है, नयी अभिवृत्तियों को अपना सकता है, हीनता की अनुभूति से मुक्ति प्राप्त कर सकता है आत्म विश्वास अर्जित कर सकता है तो अनेक

समायोजनात्मक बाधाएं दूर हो सकती हैं। व्यक्तिगत निर्देशन इस दिशा में व्यापक रूप से प्रयत्न कर सकता है।

- नैतिक मार्गदर्शन के अभाव, उपयुक्त जीवनदर्शन की अनुपस्थिति और नैतिकता संबंधी द्वन्द्वों के कारण अनेक व्यवहारगत समस्याएं मुख्यतः असमंजस और अनिश्चितता, उत्पन्न होती है। अतः उपयुक्त नैतिक संदर्भोंके विकास और नैतिक द्वन्द्व के समाधान की दिशा में सहयोग प्रदान करना चाहिए।
- यौनिकता संबंधी आवश्यकताएं प्राथमिक आवश्यकताएं होती हैं। अनेक नैतिक प्रश्न यौनिक जीवन से जुड़े हैं; यौनिक जीवन समस्याओं का भण्डार प्रस्तुत करता है। बच्चों की अनेक उत्सुकताएं होती है जिनका समाधान किया जाना चाहिए। अतः यौनिक व्यवहार के क्षेत्र में निर्देशन के द्वारा स्वास्थ्य और समायोजन स्थापित करने के लिए सहायता देना चाहिए।
- परिवार में अनेक प्रकार की जिम्मेदारियों के निर्वाह योग्य बनने के लिए विभिन्न प्रकार की अच्छी व्यवहार प्रणालियों का अधिगम आवश्यक होता है इसे शिक्षा और विकासात्मक निर्देशन कार्यक्रम के माध्यम से विकसित किया जाता है। किन्तु जब उसमें अभाव रह जाता है तब व्यक्तिगत निर्देशन हस्तक्षेप करता है और पारिवारिक समायोजन की वृद्धि में सहयोग देना है
- व्यक्ति के जीवन में कुण्ठा-सहनशीलता महत्वपूर्ण होती है। कुण्ठा-सहनशीलता के अभाव में शीघ्र तनाव की उत्पत्ति हो जाती है अतः ऐसी श्रेणी के व्यक्तियों को कुण्ठा-सहनशीलता बढ़ाने हेतु निर्देशनात्मक सहयोग प्रदान करना।।
- विद्यार्थियों की असफलता और असमायोजन में एकाग्रता की कमी, उपयुक्त अध्ययन आदतों का अभाव, मद्यपान और औषधि व्यसन, आक्रामकता, आत्मविश्वास की कमी, हीनता की अनुभूति, आत्म-ग्लानि, दोषपूर्ण आत्म-प्रत्यक्षण, उचित दृष्टिकोण के अभाव को महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। अतः ऐसे कारकों के प्रभाव के नियंत्रण और निरोध तथा यथासंभव शीघ्र समाधान हेतु व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

3.8 समायोजन की प्रक्रिया में विद्यालय और शिक्षकों की भूमिका

विद्यालय की भूमिका पर चर्चा में इस पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया जाता है कि यह ज्ञान के निर्माण और ग्रहण के अवसर को सुनिश्चित करता है। इसकी अनुषंगी भूमिका में समाजीकरण के नाम पर भारी भरकम शब्दावली में 'चरित्र निर्माण', 'नागरिकता विकास' व 'सांस्कृतिक चेतना' के पोषण आदि उद्देश्यों का भी नाम गिनाया जाता है। इन सभी पक्षों के साथ विद्यालय, व्यक्ति को वैयक्तिक और सामाजिक समायोजन में समर्थ बनाता है। विद्यालय में विद्यार्थी अपने सहपाठियों और शिक्षकों के साथ एक रिश्ते का विकास करता है। ये रिश्ते उसकी सामाजिक-सांवेगिक आवश्यकताओं और समस्याओं के एक क्षेत्र के रूप में उपस्थिति रहते हैं। अभिप्राय यह है कि विद्यालय विद्यार्थी को समयोजन में सहयोग करता है और समायोजन की चुनौतियां भी उपस्थित करता है। अकादमिक उपलब्धि का दबाव, हमउम्र

साथियों के साथ तनाव, प्रदर्शन को ऊँचे स्तर का पाने के लिए प्रतियोगिता का भाव, ईर्ष्या आदि को समायोजनकारी चुनौतियों के रूप में पहचाना जा सकता है वही रूचि के विकास, अन्तरवैयक्तिक संबंधों का विकास, सामूहिकता की भावना, आत्म नियमन कुछ ऐसे पक्ष हैं जहां विद्यालय समायोजन करने में सहयोग प्रदान करता है।

व्यक्ति की विद्यार्थी रूपी पहचान को हम कक्षा विशेष के विद्यार्थी होने, उपलब्धि के पैमाने पर उसकी उपस्थिति और रूचि आदि के सापेक्ष परिभाषित करते हैं। इसके साथ ही उसके 'स्व' के अनेक ऐसे पक्ष है जिसका बीजवपन और पोषण विद्यालय के द्वारा ही होता है। जैसे ही विद्यार्थी की पहचान के साथ व्यक्ति विद्यालय में कदम रखता है उसका संपर्क हमउम्र साथियों और वयस्कों के ऐसे समुच्चय के साथ होता है जिनके सम्मुख उसे कर्ता की भूमिका निभानी है। अब उसकी पहचान केवल उसके नाम की सूचना देने वाली संज्ञा तक सीमित हो जाती है। अपने प्रदर्शन और अन्तःक्रियाओं के आधार पर अपनी पहचान में नए आयाम जोड़ना प्रारंभ करता है। विद्यालय सोद्देश्य तरीके से विद्यार्थी को उसका 'स्व' खोजने का मार्ग प्रशस्त करता है। विद्यालय उसमें इस भाव का पोषण करता है कि वह क्या-क्या कर सकता है ? वह जो कर सकता है या जो करना चाहता है और जिन कार्यों को उसने कर लिया है उसके आधार पर वह अपनी पहचान को स्वयं परिभाषित करने लगता है और इसी रूप में वह पहचाना भी जाता है। यह क्षण और दौर प्रत्येक व्यक्ति के समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालय में की गयी अन्तःक्रियाएं विद्यार्थी को संदेश देती हैं कि वह क्या-क्या करने में दक्ष और समर्थ है? और वह क्या-क्या नहीं कर सकता है। इन दोनों प्रकार के संदेशों में संतुलन व्यक्ति के समायोजन को निर्धारित करता है। प्रथम दशा में जहां विद्यार्थी अति उच्च आकांक्षा के दबाव से ग्रस्त हो जाता है वहीं दूसरी स्थिति में उसके भीतर हीनता घर कर जाती है। हमें इन दोनों प्रकार की स्थितियों से बचने का प्रयास करना होगा।

परिवार से भिन्न सामूहिक व्यवस्था में अपने लिए स्थान बनाना समायोजन की चुनौती के रूप में उपस्थित होता है। व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह समूह के द्वारा स्वीकार किया जाए। कक्षा में समूह में स्वीकृति और अस्वीकृति के संदेशों का मुख्य संप्रेषक शिक्षक होता है।

एक शिक्षक के लिए अपने विद्यार्थियों के संदर्भ को जानना महत्वपूर्ण है। आप किसी भी शिक्षक से पूछिए कि क्या वह अपने विद्यार्थियों के संदर्भ को जानता है। शिक्षक का स्वाभाविक उत्तर होगा- हाँ। यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि आप संदर्भ के अन्तर्गत किन पक्षों को शामिल करते हैं और उसके प्रतिक्या दृष्टि रखते हैं। सीमित दायरे में संदर्भ परिवार की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की सूचनात्मक जानकारी तक सीमित हो सकता हैं। इसमें आप विद्यार्थियों की रूचि, शौक और हम उम्र साथियों के समूह जैसे पक्षों को भी सम्मिलित कर सकते हैं लेकिन संदर्भ परिवर्तनशील होता है। विद्यार्थी मीडिया और सूचना प्रौद्योगिकी के संपर्क में हैं। वह अपने समुदाय, बाजार, वृहद्परिवार के सदस्यों का अवलोकन कर रहा है। वह समाज की विभिन्न घटनाओं का प्रत्यक्षण कर रहा है। इन सभी के संयुक्त प्रभाव में वह अपने व्यवहार और क्रियाओं को निर्देशित कर रहा है। शिक्षक को सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह विद्यार्थी के अनुभवों को 'पढ़ने' की कोशिश करे। इसके लिए शिक्षक विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के अवसर उपलब्घ कराने चाहिए। उसकी अभिव्यक्ति को स्वीकार करना चाहिए उसके प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा प्रकट करनी चाहिए। ऐसी शंका उठ सकती है कि इस स्थिति में अध्यापन कैसे करेंगे? यह तो शिक्षण का प्रथम चरण

होगा। जब आप इन अनुभवों को सुनें तो विद्यार्थी के सम्मुख आलोचनात्मक प्रश्न रखें। केवल सुनने और 'शाबाश' कहने के अलावा आप को उन बिंदुओं को पहचानना होगा जो समस्यामूलक है और जो सार्थक हस्तक्षेप की मांग करते हैं।

एक व्यक्ति जो अपने परिवेश और स्वयं के साथ समायोजन रखता है वह अपने परिवेश में सकारात्मक ऊर्जा को बनाए रखता है। व्यक्ति को अपने सामर्थ्य और मजबूत पक्षों के प्रति सचेत रखने और कमजोरियों व विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए समर्थ बनाने में विद्यालय और शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कक्षा- शिक्षण और विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों के आयोजन के संदर्भ में शिक्षकों को ध्यान रखना चाहिए कि वे विद्यार्थियों की सामाजिक-सांवेगिक आवश्यकताओं को भी संबोधित करें। इसके लिए शिक्षक अपने विद्यार्थियों के प्रति तद्नुभूति पूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन कर सकता है। उसे विद्यार्थियों तक यह संप्रेषित करने का प्रयास करना चाहिए प्रत्येक विद्यार्थी अपने में अनोखा और विशिष्ट है। विद्यालय, परिवार और समाज उसकी इस अद्वितीयता को स्वीकार करता है। उदाहरण के लिए विद्यालय की किसी भी गतिविधि के आयोजन में सभी विद्यार्थियों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जाए, सहभागिता के दौरान उन्हें दिए गए दायित्वों के निर्वहन में सहयोग प्रदान किया जाए, प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित किया जाए। यह ध्यान रखा जाए कि कमियों को उजागर करने के बजाय मजबूत पक्षों की सार्वजनिक स्वीकृति और कमजोर पक्षों पर परामर्श व निर्देशन हो।

विद्यार्थियों के समायोजन अथवा कुसमायोजन में शिक्षकों के संप्रेषण की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। शिक्षक द्वारा विद्यार्थियों के लिए प्रयुक्त विशेषणों की कल्पना कीजिए। 'मेधावी', 'औसत', 'बदमाश', 'तीव्र बुद्धि पर पढ़ने में रूचि न लेने वाला', 'लापरवाह', 'उत्साही' आदि कुछ ऐसे ही विशेषण हैं। ये विशेषण विद्यार्थियों पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। जब एक विद्यार्थी को आप लगातार एक वर्ग या श्रेणी के अंतर्गत रखेगें तो वह स्वाभाविक रूप से अपने को उसी वर्ग या श्रेणी के व्यवहार प्रतिरूपों का समुच्चय बनाने लगेगा। अतः कक्षा में शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ बातचीत करने के दौरान यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी भाषा विद्यार्थियों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से क्या संदेश संप्रेषित कर रही है।

विद्यालय और परिवार के बीच संवाद का विकास होना चाहिए। शिक्षकों को इस प्रकार के संवाद में मध्यस्थता की भूमिका का निर्वहन करना चाहिए। इस प्रकार के प्रयास से परिवार विद्यार्थी के उन पक्षों को जान पाएगा जो विद्यालय से संबंधित है और जिनकी तुष्टि में विद्यालय के साथ अभिभावकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। विद्यालय द्वारा भी अपने विद्यार्थियों के वृहद् जीवन को खोजने का प्रयास करना चाहिए। तभी तो विद्यालय उन सामाजिक- सांवेगिक आवश्यकताओं से परिचित हो सकेगा जो विद्यार्थियों के समायोजन में चुनौती के रूप में उपस्थित रहती है।

सार

सतत परिवर्तनशील जीवन में व्यक्ति की आकांक्षाएं और इच्छाएं बदलती रहती है। व्यक्ति को अपनी आकांक्षाओं और समाज की अपेक्षाओं के साथ संतुलन बैठाना होता है। समायोजन का अर्थ होता है कि जीवन की आवश्यकताओं मांगों से अपनी शक्ति ओर सामर्थ्य के संदर्भ में अनुकूलन करके चलना। अतः जो इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक अनुकूलन में जितना समर्थ है वह उतना ही अच्छी तरह

अपनी संघर्षपूर्ण जिंदगी को जी सकता है। समायोजन के द्वारा एक ओर तो हम अपने आपको बदलती परिस्थितियों के अनुसार बदलने का प्रयत्न करते हैं तो दूसरी ओर समायोजन हमें ऐसी शक्ति और सामर्थ्य भी देता है कि हम परिस्थितियों को ही बदल डालें। समायोजन के लिए जहाँ अपने को बदलकर संतुलन बनाया जा सकता है अर्थात् दूसरे शब्दों से समझौता किया जा सकता है वहाँ ऐसा साहस भी किया जा सकता है कि परिस्थितियों को ही बदल कर अपने अनुकूल या इच्छा अनुसार कर लिया जाए।

समायोजन वस्तुतः समायोजनात्मक प्रक्रिया के तीन घटकों के मध्य संतुलन स्थापित करने की क्रिया है। जिन व्यवहार प्रणालियों द्वारा समायोजनात्मक संतुलन स्थापित होना संभव होता है उन्हें समायोजनात्मक प्रतिक्रियाएं या समायोजनात्मक व्यवहार कहते हैं। समायोजनात्मक प्रक्रिया का आरम्भ व्यक्ति की आवश्यकताओं के सक्रियकरण के साथ होता है।

समायोजन संबंधी उसकी इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी भी व्यक्ति के समायोजन क्षेत्रों को तीन मुख्य भागों - व्यक्तिगत, सामाजिक तथा व्यावसायिक में बांटकर समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। एक भली भांति समायोजित कहे जाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व व व्यवहार में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं:

समायोजित कहे जाने वाले बालक में शारीरिक स्वास्थ्य एवं विकास संबंधी विशेषता पायी जाती है। एक समायोजित व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार काफी संतुलित होता है वह अपने संवेगों की उचित अभिव्यक्ति को उचित ढंग से सीख लेता है। भली- भांति समायोजित व्यक्ति यह जानता है कि उसकी अपनी योग्यताओं तथा क्षमताओं का क्या स्तर है। किन बातों में वह आगे है तथा किन में पीछे। भली भांति समायोजित व्यक्ति जो कुछ भी अपने व्यक्तित्व में होता है उससे संतुष्ट रहने का प्रयत्न करता है। तथा अपने आत्म का भी सम्मान करता है। एक भली भांति समायोजित व्यक्ति सामाजिक विकास तथा सामाजिकता की दृष्टि से अपनी आयु के अनुसार ठीक प्रगति करता है। एक समायोजित व्यक्ति इसी प्रकार का संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करता है और इसलिए अनावश्यक चिंता, परेशानी तथा निराशा के शिकार होने से बच जाता है। एक समायोजित व्यक्ति स्वभाव से दूसरों में उनकी अच्छाइयों के ही दर्शन करता है उनकी बुराइयों तथा दोषों को ढूंढकर उनका प्रचार नहीं करता। समायोजित व्यक्ति का रूख व्यवहार तथा दृष्टिकोण अड़ियल टट्टू की तरह नहीं होता।

जब समायोजन स्थापित करने के लिए, व्यक्ति की आवश्यकताओं, उसकी क्षमताओं और विशेषताओं एवं परिस्थितियों के मध्य संतुलन स्थापित करने के लिए व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यवहार अंततः विफल हो जाते हैं तब कुण्ठा की दशा उत्पन्न होती है। कुण्ठा की उत्पत्ति का कारण समायोजनात्मक प्रक्रिया के तीनों घटकों में से कहीं भी स्थित हो सकता है- आवश्यकताओं की तीव्रता, आवश्यकताओं का द्वन्द्व, या व्यक्ति की क्षमताओं और विशेषताओं में कोई कमियां, जैसे बुद्धि न्यूनता, आकर्षक न होना, अपने बारे में और अपनी सार्मथ्यों के बारे में प्रत्यक्षण का उपयुक्त न होना, अभिवृत्तियों का उपयुक्त न होना आदि; अथवा, परिवेश में गंभीर बाधाओं की उपस्थिति, जैसे कानूनी बाधा, व्यक्ति के लिए अस्वीकार्य परम्पराएं, मूल्य या कार्य, दुर्घटना, आपदा आदि।

प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से निर्देशन की आवश्यकता होती है। इसके माध्यम से वह अपने विचारों, अपेक्षाओं और समस्याओं से निपटने में समर्थ होता है। व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति को

अपने परिस्थितियों का यथार्थपरक मूल्यांकन करते हुए अपनी सकारात्मक भूमिका सुनिश्चित करने में सहयोग करता है। व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति को समायोजनात्मक प्रक्रिया के घटकों को प्रभावित करने की दिशा में सहयोग प्रदान किया जाता है।

इकाई 4. परामर्श

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 परामर्श- संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा
4.4 विभिन्न परामर्श सिद्धांत
4.5 परामर्श की विधियाँ एवं तकनीक
4.6 परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता
4.7 परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ
4.8 परामर्श और मार्गदर्शन में शोध
4.9 परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर
4.10 विद्यालय में परामर्श सेवा
4.11 विशिष्ट बालकों के लिए परामर्श
4.12 सारांश
4.13 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर
4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप

1. परामर्श के अर्थ एवं संप्रत्यय को समझ पाएँगे।
2. परामर्श एवं मार्गदर्शन में अंतर कर पाएँगे।
3. परामर्श की आवश्यकता से अवगत हो सकेंगे।
4. परामर्श प्रक्रिया के प्रमुख अंगों को समझ सकेंगे।
5. परामर्श के सैद्धांतिक आधारों की समझ विकसित कर पाएँगे।
6. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्रदान किये जाने वाले व्यक्तिगत परामर्श की प्रकृति एवं महत्ता को समझ सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

मार्गदर्शन सेवा में परामर्श ह्रदय के समान कार्य करता है। यदि परामर्श सेवा न हो तो मार्गदर्शन कार्यक्रम का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है। मार्गदर्शन कार्यक्रम में व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है। इन समस्याओं का स्वरुप एवं इनकी मात्रा में विभिन्नता हो सकती है। इन्हीं समस्याओं को दूर करने के लिए मार्गदर्शन कार्यक्रम के अंर्तगत कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। परामर्श सेवा उन विभिन्न सेवाओं में से एक है। समस्याओं के स्वरूप के आधार पर परामर्श सेवा की प्रक्रिया को संपन्न करने के लिए अधिक योग्य और प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः इस इकाई में हम परामर्श प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं को गहराई में जानेंगे।

4.3 परामर्श- संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा

परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान, व्यवहारगत या समायोजनात्मक समस्याओं के परिहार एवं उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं संतोषप्रद बनाने का प्रयत्न किया जाता है। वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार- "परामर्श का आशय पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क अथवा विचारों का पारस्परिक विनिमय है।" कार्ल रोजर्स ने परामर्श को आत्म बोध की प्रक्रिया में सहायक बताया है। इसी प्रकार रॉबिन्सन (1950) के अनुसार- "परामर्श के अंतर्गत वे समस्त परिस्थितियाँ सम्मिलित कर ली जाती हैं जिनके आधार पर परामर्शप्राथी या सेवार्थी को अपने वातावरण में समायोजन हेतु सहायता प्राप्त होती है। परामर्श का सम्बन्ध दो व्यक्तियों से होता है- परामर्शदाता एवं सेवार्थी या परामर्शप्राथी। परामर्श के आशय के सन्दर्भ में एक विशिष्ट पक्ष यह भी है कि परामर्श की प्रक्रिया के द्वारा सेवार्थी या परामर्शप्राथी पर किसी निर्णय को थोपा नहीं जाता है, वरन उसकी सहायता इस प्रकार की जाती है कि वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो सके। रुथ स्ट्रेंग ने परामर्श की प्रक्रिया को एक संयुक्त प्रयास बताया है जिसका सारतत्व एक ऐसा सम्बन्ध है जिसमें व्यक्ति, जिसका परामर्श हो रहा है, स्वयं को पूर्णतः अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्रता का अनुभव करता है, तथा अपने लक्ष्यों, उनकी सिद्धि के बारे में स्पष्टीकरण व उनकी सिद्धि हेतु अपने सामर्थ्यों और समस्याओं के प्रकट होने पर उनके समाधान की विधियों या साधन के बारे में आत्मविश्वास अर्जित करता है।" जॉर्ज मायर्स के मतानुसार परामर्श का कार्य तब संपन्न होता है, जब यह सेवार्थी को अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए बुद्धिमतापूर्ण विधियों का उपयोग करके सहायता प्रदान करता है।

परामर्श की प्रकृति

परामर्श की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात हम परामर्श की प्रकृति के विषय में निम्नलिखित बिन्दुओं का उल्लेख कर सकते हैं:

1. परामर्श समस्त निर्देशन कार्यक्रम का सक्रिय भाग है।
2. परामर्श व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है।
3. परामर्श दो व्यक्तियों (परामर्शदाता एवं सेवार्थी) के बीच व्यावसायिक सम्बन्ध की प्रक्रिया है।
4. परामर्श मधुर एवं सहयोगात्मक वातावरण में ही संभव है।
5. परामर्श अधिगम केन्द्रित प्रक्रिया है।
6. परामर्श की प्रक्रिया में बातचीत, वार्तालाप एवं बहस द्वारा समस्या को स्पष्ट किया जाता है।
7. परामर्श लोकतांत्रिक होता है। यह लोकतांत्रिक पद्धति की स्थापना करता है। परामर्श व्यक्ति को चयन करने और उस पर अमल करने में सहायता करता है।
8. उत्तम परामर्श सेवार्थी द्वारा लिए निर्णय के रूप में होता है।
9. परामर्श पूर्णरूप से स्वयं-निर्देशन पर आधारित है।
10. परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है।

11. परामर्श व्यक्तियों को उन दोषों या अयोग्यताओं को समाप्त करने या उनमें सुधार करने में सहायता देता है जो उनके सीखने की प्रक्रिया में रूकावट डालती हैं। ये सुधार मूलभूत कौशलों जैसे पढ़ना और सामाजिक समायोजन द्वारा किये जा सकते हैं।

परामर्श की मूलभूत अवधारणाएं

1. परामर्श के लिए अनुकूल वातावरण आवश्यक है।
2. वातावरण की गोपनीयता आवश्यक है।
3. जब तक प्राथी इस प्रक्रिया में स्वेच्छा एवं तत्परता के साथ भाग नहीं लेता है, तब तक परामर्श सफल नहीं होता है।
4. परामर्शदाता को परामर्श की प्रक्रिया के दौरान सेवार्थी के सम्मान एवं मर्यादा का आदर करना चाहिए।
5. परामर्श अधिगम परिस्थिति है।
6. परामर्श इस मान्यता को लेते हुए दिया जाता है कि परामर्श में प्रयुक्त साधन व्यक्ति के विकास या उसकी इस दिशा में सहायता करेंगे।
7. परामर्श यह भी उत्तरदायित्व लेता है कि व्यक्ति को परिवर्तनों के योग्य बनाया जाए ताकि उनका उचित समायोजन हो।
8. परामर्शदाता के पास अनुभव, प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण का होना आवश्यक है।

4.4 विभिन्न परामर्श सिद्धांत

मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित मूल सिद्धांतों पर आधारित है-

1. स्वीकृति का सिद्धांत- इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक सेवार्थी को एक व्यक्ति के रूप में समझा जाए और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए। व्यक्ति के अधिकारों को परामर्शदाता पूर्ण सम्मान प्रदान करे।
2. व्यक्ति के सम्मान का सिद्धांत- परामर्श की सभी विचारधाराएँ व्यक्ति के सम्मान पर बल देती हैं अर्थात व्यक्ति की भावनाओं का आदर करना परामर्श प्रक्रिया का आवश्यक अंग होना चाहिए।
3. उपयुक्तता का सिद्धांत- परामर्श ऐसा सम्बन्ध है जिसमें कुछ आशा बँधती है तथा वातावरण व्यक्ति के अनुकूल होने लगता है। सभी विचारधाराएँ परामर्श के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करती हैं।
4. व्यक्ति के साथ सोचने का सिद्धांत- परामर्श व्यक्ति के साथ सोचने पर बल देता है। 'किसके लिए सोचना' और 'क्यों सोचना'- इन दोनों बातों में भेद करना आवश्यक है। यह परामर्शदाता की भूमिका है कि वह सेवार्थी के आसपास की सभी शक्तियों के बारे में सोचें, सेवार्थी की चिंतन प्रक्रिया में शामिल हों और उसकी समस्या के सम्बन्ध में सेवार्थी के साथ मिलजुल कर कार्य करें।
5. लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ निरंतरता का सिद्धांत- सभी सिद्धांत लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ जुड़े हुए हैं। लोकतांत्रिक आदर्श व्यक्ति को स्वीकार करने की माँग करते हैं और दूसरे के अधिकारों का

उपयुक्त सम्मान चाहते हैं। परामर्श प्रक्रिया व्यक्ति के सम्मान के आदर्श पर आधारित है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मानने वाली प्रक्रिया है।

6. सीखने का सिद्धांत- परामर्श की सभी विचारधाराएँ परामर्श प्रक्रिया में सीखने के तत्त्वों की विद्यमानता को मानते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें

1. परामर्श से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रकृति का विश्लेषण करें।

___

___

___

2. परामर्श के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या करें।

___

___

___

4.5 परामर्श की विधियाँ एवं तकनीक

परामर्श द्वारा प्रयुक्त विधियाँ एवं तकनीक विद्यार्थी की विशेषता और व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए। विलियमसन ने परामर्श-तकनीकों को निम्नलिखित पाँच शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित किया है-

1. मधुर सम्बन्ध स्थापित करना- जब पहली बार सेवार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता का सबसे पहला कार्य होता है कि वह उसके साथ स्वागतपूर्ण तरीके से पेश आये। उसे आरामदेह स्थिति में लाकर सेवार्थी को विश्वास में ले लेना चाहिए। मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है- परामर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास और सेवार्थी के साथ संबंधों को विकसित करना।
2. स्वयं-बोध उत्पन्न करना- सेवार्थी को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट ज्ञान एवं समझ होनी चाहिए। इन सबकी समझ सेवार्थी को इन योग्यताओं और उत्तरदायित्वों के प्रयोग से पहले ही हो जानी चाहिए। इसके लिए परामर्शदाता को परीक्षण-संचालन और परीक्षण अंकों की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण-अंक निदान और पूर्व अनुमान परामर्श प्रक्रिया में ठोस-आधार प्रदान करते हैं।
3. परामर्श क्रिया के लिए कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव- परामर्शदाता सेवार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियों या दृष्टिकोणों आदि से प्रारंभ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल आँकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों को तौलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि वह विद्यार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है। विलियमसन का मानना है कि

परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए। उसे अनिर्णायक की तरह नहीं दिखना चाहिए।

परामर्शदाता प्रत्यक्ष सुझाव या सलाह देने से नहीं डरता है क्योंकि सेवार्थी आँकड़ों का उपयोग नहीं समझ सकता है। विलियमसन ने आँकड़े इकट्ठे करने के पश्चात् सेवार्थी को सलाह देने की निम्न विधियाँ बताई हैं-

i. प्रत्यक्ष सलाह- इसमें परामर्शदाता निर्भय होकर अपनी राय बता देता है। इस प्रकार की पद्धति बड़े कठोर मस्तिष्क वाले लोगों के लिए उपयुक्त है जो किसी भी क्रिया या गतिविधि का विरोध नहीं करते हैं तथा फेल होने से भी नहीं डरते हैं।
ii. पर्सुएसिव (Persuasive) विधि- यह विधि तब लाभकारी होती है जब आँकड़े स्पष्ट रूप से कोई निश्चित विकल्प की ओर संकेत करते हैं। परामर्शदाता प्रमाणों का केवल विश्लेषण करता है और विकल्पित क्रियाओं के परिणामों को देखता है।

4. व्याख्यात्मक विधि- व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें परामर्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे-धीरे निदानात्मक आँकड़े को समझता है और उन संभावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें सेवार्थी की शक्तियों या क्षमताओं का प्रयोग किया जा सकता हो। इसमें आँकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है। इस सहायता में उपचारात्मक कार्य और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।
5. अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग- कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार के सेवार्थियों/विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता है। उसे अपनी सीमाओं को पहचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता के स्रोतों का ज्ञान होना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को अन्य उपयुक्त स्रोतों से सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए।

इन उपर्युक्त विधियों एवं तकनीकों के अतिरिक्त कुछ अन्य परामर्श प्रविधियाँ भी हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. मौन धारण- कभी-कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब सेवार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता सेवार्थी की बात को बड़े गौर से सुनता है तथा उस पर गंभीरता से विचार करता है।
2. स्वीकृति- परामर्शदाता सेवार्थी की बात को अस्थायी स्वीकृति देता है। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है जिनसे यह मालूम पड़ जाता है कि सेवार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टतः समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है जिससे सेवार्थी के बोलने के धाराप्रवाह में कोई रुकावट नहीं आती है। उदाहरणार्थ, 'ठीक है', 'बहुत अच्छा', 'हूँ' इत्यादि। कई अवसरों पर परामर्शदाता अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिए कोई शब्द नहीं कहता, केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।
3. स्पष्टीकरण- कई अवसरों पर परामर्शदाता को चाहिए कि वह सेवार्थी की बातों का या उसके द्वारा दिए गए वर्णन का स्पष्टीकरण करे। परामर्शदाता का यह कर्तव्य है कि वह सेवार्थी को इस बात से परिचित

करा दे कि वह उसे समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। कभी-कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह सेवार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण कर दे, परन्तु स्पष्टीकरण करते समय सेवार्थी को किसी प्रकार की ज़ोर-ज़बरदस्ती का आभास नहीं होना चाहिए।

4. पुनर्कथन- स्वीकृति एवं पुनरावृत्ति दोनों से ही सेवार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उसकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है जिसे सेवार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनर्कथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण सेवार्थी के मापन में नहीं करता है।

5. मान्यता- अपनी समस्या के बारे में सेवार्थी विभिन्न विचार व्यक्त करता है। परामर्शदाता इन विचारों में से कुछ को मान्यता प्रदान कर देता है तथा कुछ को नहीं। जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है वे सेवार्थी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। सेवार्थी परामर्शदाता के ज्ञान एवं व्यक्तित्व से भी प्रभावित होता है।

6. प्रश्न पूछना- सेवार्थी को अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिए परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न सेवार्थी के वक्तव्य का अंश समाप्त होने के पश्चात ही पूछे जाने चाहिए।

7. हास्य रस- परामर्श के दौरान सेवार्थी का तनाव दूर करने के लिए तथा वार्तालाप को रूचिकर बनाने के लिए हास्य-रस का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाती है।

8. सारांश स्पष्टीकरण- सेवार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं भी हो सकता है। इसके कारण समस्या स्वयं ही सेवार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सेवार्थी के भाषण को संक्षिप्त करे तथा उसका संगठन करे जिससे सेवार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सके। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी भी अपनी ओर से विचार ना जोड़े।

9. विश्लेषण- सेवार्थी की समस्या के लिए परामर्शदाता समाधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता सेवार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता सेवार्थी पर ही छोड़ देता है कि वह उस समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करे। इस सम्बन्ध में सेवार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता है।

10. व्याख्या या विवेचना- परामर्शदाता को सेवार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा सेवार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्षों को निकालने में अकेला सेवार्थी असमर्थ होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।

11. परित्याग- कई बार सेवार्थी जो कहता या सोचता है वह त्रुटिपूर्ण होता है। इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण विचारधाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिए परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए ताकि सेवार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाए और इस परित्याग का उल्टा अर्थ न निकाल ले।

12. आश्वासन- परामर्श की सबसे महत्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि के रूप में 'आश्वासन' प्रदान करने से सेवार्थी की समस्या हल होने की आशा बंध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता सेवार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ-साथ अनुमोदित या समर्थन प्रदान करता है। आश्वासन के समान प्रभाव दिखाई देते हैं। आश्वासन को स्वीकृति से अधिक विस्तृत या व्यापक माना जाता है। अतः आश्वासन में स्वीकृति भी सम्मिलित होती है।

4.6 परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता

साक्षात्कार केवल एक तकनीक है जो परामर्श में प्रयुक्त होती है। परामर्श एक विशाल तथा विस्तृत शब्द है। जोन्स के अनुसार साक्षात्कार को निर्देशन की एक सामान्य विधि कहना बहुत मुश्किल है। साक्षात्कार समस्त परामर्श नहीं है क्योंकि परामर्श अनौपचारिक परिस्थितियों में और संक्षिप्त वार्तालाप में ही हो सकता है। साक्षात्कार सामूहिक निर्देशन में प्रयुक्त नहीं हो सकता है और इसका सम्बन्ध परामर्श की स्थिति में केवल क्लीनिकल विधियों से ही होता है अर्थात जब संपर्क परामर्शदाता और केवल एक सेवार्थी के बीच हो। साक्षात्कार परामर्श के साथ बहुत ही निकट से जुड़ा हुआ है। साक्षात्कार आमने-सामने की बहस है। साक्षात्कार सदा ही परामर्श की केन्द्रीय प्रक्रिया होता है। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता है कि यह साक्षात्कार ही सब कुछ होता है क्योंकि परामर्श की अन्य प्रक्रियाओं में टेलीफोन पर बातचीत तथा दो व्यक्तियों में पत्र-व्यवहार आदि भी शामिल होते हैं। बुद्धिमत्तापूर्ण परामर्श में अनुवर्ती कार्य भी शामिल होता है जो परामर्श-साक्षात्कार के पश्चात और व्यक्ति के परामर्श-साक्षात्कार से पहले के अध्ययन द्वारा किया जाता है। संक्षेप में, परामर्श प्रक्रिया के तीन मुख्य चरण होते हैं-

1. व्यक्ति का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन
2. समस्या पर आमने-सामने बहस करना
3. एक प्रणालीबद्ध अनुवर्ती कार्यक्रम

साक्षात्कार इस प्रक्रिया में दूसरा चरण होता है अर्थात समस्या पर आमने-सामने बैठकर बहस करना। इस प्रकार हम देखते हैं कि साक्षात्कार परामर्श-प्रक्रिया का एक अंश मात्र ही है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

3. परामर्श में प्रयुक्त विभिन्न प्रविधियों पर प्रकाश डालें।

____

____

____

4. परामर्श में साक्षात्कार की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए।

____

____

____

4.7 परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ

परामर्श की प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श-साहित्य में परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक-परामर्श: परामर्शदाता-केन्द्रित परामर्श परामर्शदाता के इर्दगिर्द घूमता है। वह मैत्री और सहायता द्वारा मधुर-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। इसमें परामर्शदाता बहुत सक्रिय होता है और वह प्रायः अपने स्वयं के दृष्टिकोण और भावनाएँ स्वतंत्र रूप से प्रकट करता रहता है। वह सेवार्थी की अभिव्यक्तियों का मूल्यांकन करता है। इस विचारधारा के अनुसार परामर्श साक्षात्कार का नेतृत्व करता है। इसमें परामर्शदाता प्रायः प्रमापीकृत प्रश्नों की एक श्रृंखला पूछता है तथा प्रत्येक का संक्षिप्त उत्तर हो सकता है। परामर्शदाता सेवार्थी की अभिव्यक्ति और भावनाओं के विकास की आज्ञा नहीं देता है। एक विशेषज्ञ के तौर पर वह नेतृत्व करता है, मूल्यांकन करता है और सुझाव या सलाह देता है।

इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिन्नेसोटा विश्वविद्यालय के ई.जी. विलियमसन हैं। इस प्रकार इस विचारधारा के अंतर्गत परामर्शदाता सेवार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में सब कुछ स्वयं ही बताता है।

2. अनिर्देशीय परामर्श या सेवार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श: अनिर्देशीय परामर्श या सेवार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श के मुख्य प्रवक्ता कार्ल.आर. रोजर्स हैं। इस सिद्धांत का विकास बहुत वर्षों में हुआ। इसलिए इस प्रकार के परामर्श में कई क्षेत्र शामिल होते रहे जैसे- व्यक्तित्व का विकास, सामूहिक नेतृत्व, शिक्षा एवं अधिगम, सृजनात्मकता, पारस्परिक सम्बन्ध तथा पूर्ण रूप से क्रियाशील व्यक्ति की प्रकृति। इस सिद्धांत का विकास 1930 और 1940 के बीच हुआ। इस सिद्धांत का विश्वास है कि व्यक्ति के अन्दर ही उसकी स्वयं की समस्या को सुलझाने के पर्याप्त साधन मौजूद होते हैं। परामर्शदाता का कार्य तो केवल इतना ही है कि वह ऐसा वातावरण प्रदान करे जिसमें सेवार्थी वृद्धि के लिए स्वंतत्र हो ताकि वह जैसा चाहे, वैसा ही व्यक्ति बन सके। यह विचारधारा व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं के संवेगात्मक पक्षों को महत्व देती है और परामर्श-प्रक्रिया के हिस्से के रूप में निदानात्मक सूचना को अस्वीकार करती है।

सेवार्थी-केन्द्रित परामर्श सेवार्थी के इर्द-गिर्द घूमता है। इसमें सेवार्थी को वार्तालाप में नेतृत्व करने के लिए और स्वयं के दृष्टिकोणों, भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। परामर्शदाता अधिकतर निष्क्रिय ही रहता है। वह सेवार्थी के विचारों, भावों, भावनाओं और अभिव्यक्तियों के धाराप्रवाह में हस्तक्षेप नहीं डालता है। परामर्शदाता सेवार्थी की बातचीत करने में पूरी सहायता करता है। बुनियादी तौर पर परामर्शदाता मधुर-सम्बन्ध स्थापित करके दोनों पक्षों में पारस्परिक विश्वास की भावना उत्पन्न करने का ही प्रयास करता है। इस विचारधारा या उपागम में मुक्त-अंत प्रश्न ही

पूछे जाते हैं। ये प्रश्न पूर्ण रूप से रचित नहीं होते हैं। इन प्रश्नों के उत्तरों में व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व का प्रक्षेपीकरण कर देता है। परामर्शदाता का अधिकतर सम्बन्ध सेवार्थी द्वारा बताई गई संवेगात्मक विषय-वस्तु के संक्षेपीकरण से होता है। जब सेवार्थी उत्तर दे रहा होता है तब परामर्शदाता उपयुक्त तरीकों से उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है जिससे वह विस्तार से बोल सके। जिस प्रकार के प्रश्न परामर्शदाता सेवार्थी से पूछता है उससे सेवार्थी यह महसूस करने लगता है कि परामर्शदाता वास्तव में ही व्यक्तिगत तौर पर सेवार्थी के विचारों का सम्मान करता है और साक्षात्कारकर्ता सेवार्थी में रूचि ले रहा है। परामर्शदाता मात्र तथ्यों की खोज के लिए ही प्रश्न नहीं पूछता है। अनिर्देशीय परामर्श के लिए विशेषज्ञ प्रत्येक व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से स्वतंत्र होने का अधिकार देते हैं। इस प्रकार के परामर्श में निदानात्मक यंत्रों का या तो बहुत ही कम प्रयोग होता है या फिर होता ही नहीं है। यह परामर्श वृद्धि-अनुभव है। इसमें सेवार्थी अपनी बुद्धि या समझ से कार्य कर सकता है। इसमें बौद्धिक पक्षों की अपेक्षा संवेगात्मक या भावात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

3. समन्वित परामर्श या संकलक परामर्श या समाहारक परामर्श: कई बार कई परामर्शदाता न तो निर्देशीय परामर्श की विचारधारा से सहमत होते हैं और न ही अनिर्देशीय परामर्श की विचारधारा से। ऐसी परिस्थिति में परामर्शदाता एक अन्य प्रकार के परामर्श का विकास करने में सफल हुए। यह विचारधारा निर्देशीय और अनिर्देशीय परामर्श की विचारधाराओं के मध्य का परामर्श है। इसी मध्य के परामर्श की विचारधारा को ही 'समंवित परामर्श' या 'समहारक परामर्श' या 'संकलक परामर्श' कहा जाता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय होता है। इस प्रकार के परामर्श के मुख्य प्रवर्तक हैं- एफ़.सी. थोर्न। इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। इसके पश्चात परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिए अधिक उपयोगी या सहायक रहेगी। इस परामर्श प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है या इसके विपरीत- जैसा स्थिति चाहे। इससे प्रविधियाँ परिस्थिति और सेवार्थी के अनुसार होनी चाहिए। इस प्रकार के परामर्श में जो प्रविधियाँ प्रयोग की जाती हैं- वे हैं पुनः विश्वास, सूचना प्रदान करना, केस-हिस्ट्री, परीक्षण आदि।

इस प्रकार समन्वित परामर्श में दोनों, परामर्शदाता और सेवार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते हैं। दोनों बारी-बारी से वार्तालाप करते हैं और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

परामर्श में जनमाध्यम तथा वृहद् माध्यम का बढ़ता महत्व

जनमाध्यम का विकास वैज्ञानिक तकनीकी व उपकरणों के कारण बढ़ता जा रहा है। इनके द्वारा व्यक्ति अपनी बहुमुखी प्रतिभा को भरपूर अवसर प्रदान कर सकता है। वह अपनी आवश्यकता के साथ-साथ अपनी पसंद व रूची के लिए भी अनेक सूचनाओं के संपर्क में रहना चाहता है। वह अपने आस-पास के अलावा विश्व स्तर पर भी अपना सम्बन्ध जोड़कर अपनी पहचान को इन जनमाध्यमों जैसे रेडियो, दूरदर्शन, मेले, उत्सव, प्रदर्शनी, म्यूजियम, प्रदर्शनवार्ताएँ, विज्ञापन व जनमत के अन्य साधनों से और अधिक सुदृढ़ बनाता है। इनके द्वारा वह अपने नवीन कैरियर में और अधिक निखार लाने तथा प्रतिस्पर्धा

के दौर में आगे बढ़ने के लिए भी जनमाध्यम के सशक्त साधनों से मार्गदर्शन एवं परामर्श की नवीन प्रवृत्ति, नए आयामों एवं नई प्रक्रिया को अपनाता है। वह मार्गदर्शन एवं परामर्श के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्वरूपों से जुड़ता है और सूचनाओं एवं तथ्यों को ग्रहण कर निर्णय लेने में सक्षम होता है।

व्यक्ति के जीवन से जुड़ा कोई भी क्षेत्र यथा- शिक्षा, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक, शारीरिक, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक वातावरण उसकी विकास क्रियाओं के लिए दबाव समूह की भूमिका अदा करते हैं। जनमाध्यम तथा बहुमाध्यमों के द्वारा वह इनके संपर्क में आता है तथा निरंतर होने वाली प्रगति से अवगत होता रहता है। मार्गदर्शन व परामर्श के प्रचार माध्यमों से व्यक्ति तथा सेवार्थी का क्षेत्र भी व्यापक हो जाता है। केवल संस्थान के दायरे में नहीं अपितु नए पाठ्यक्रम तथा व्यवसायों की जानकारी के लिए भी वह इन्टरनेट, ई-मेल, ई-लर्निंग आदि से विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त करता है जो अद्यतन भी होतीं हैं और साथ ही सत्य भी होतीं हैं। इन सूचनाओं में पर्याप्तता तथा प्रमाणिकता होती है।

जनमाध्यम तथा बहुमाध्यम का मार्गदर्शन एवं परामर्श की सेवाओं से अत्यंत महत्वपूर्ण तथा गहरा सम्बन्ध है। परामर्श सेवाओं द्वारा विभिन्न जनमाध्यम तथा बहुमाध्यम की जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही जनमाध्यम व बहुमाध्यम से मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान किया जाता है। अतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं में जनमाध्यम एवं बहुमाध्यम की निम्नलिखित भूमिका है-

1. सेवार्थी से जुड़ी सूचनाओं का प्रचार एवं प्रसार।
2. सेवार्थी को सही, पर्याप्त एवं सही समय पर जानकारी देना।
3. प्रामाणिक सूचनाओं को सेवार्थी के हित में उपयोग करना।
4. सूचनाएँ एवं जानकारी सर्वव्यापक करना।
5. सूचनाओं को विविध रूप से प्रसारित करना।
6. सूचनाओं के लिए समय एवं अवधि का निर्धारण।
7. कैरियर से जुड़ी विशेषज्ञ वार्ताओं का आयोजन।
8. कैरियर मेले व प्रदर्शनियों का प्रबंध करना।
9. सम्बंधित व्यक्तियों से राय, सुझाव तथा प्रतिक्रिया प्राप्त करना।
10. प्रदर्शन तथा अल्प अभ्यास की सुविधा।

4.8 परामर्श और मार्गदर्शन में शोध

मार्गदर्शन एवं परामर्श-सेवाओं के विकास के लिए इनसे सम्बंधित शोध कार्य भी करने आवश्यक होते हैं। फ्रैंक डब्ल्यू. मिलर ने शोध को निम्नलिखित तीन बातों के लिए आवश्यक बताया है-

1. मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्य में लगातार सुधार के लिए।
2. विद्यालय तथा समुदाय द्वारा मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम के निरंतर समर्थन के लिए।
3. विद्यालय स्टाफ के मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्य का शैक्षिक कार्यक्रम, अतिरिक्त विद्यालय गतिविधियों तथा प्रशासन में योगदान की सूझबूझ पैदा करने के लिए।

शोध या अनुसंधान सेवा का सम्बन्ध मार्गदर्शन तथा परामर्श की परिस्थितियों के सम्बन्ध में तथ्यों को इकट्ठा करने, सिद्धांतों के प्रतिपादन करने तथा परामर्श सेवाओं का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने से होता है। इस सेवा में पत्राचार विधि का उपयोग भी किया जाता है।

शोध के उद्देश्य

संक्षेप में हम शोध के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित कर सकते हैं-

1. निर्देशन अथवा मार्गदर्शन कार्यक्रमों में सुधार करना।
2. व्यावसायिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना।
3. व्यक्ति के व्यावसायिक विकास को प्रोत्साहित करना।
4. खोज में सहायता करना।
5. अन्य सूचना सेवाओं जैसे व्यक्तिगत-आधार संकलन सामग्री, उपक्रम सेवा, परामर्श सेवा, नियुक्ति सेवा, अनुवर्ती सेवा तथा आत्म-तालिका सेवा की प्रभावशीलता तथा उपयोगिता को बढ़ाने के लिए शोध कार्य अनिवार्य होता है। इन सभी सेवाओं की प्रभावशीलता इनके मूल्यांकन पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त नई परिस्थितियों में निर्मित नई प्रविधियों को खोजने के प्रति रूचियों का विकास करने के लिए भी शोधकार्य आवश्यक है।
6. अनेक राष्ट्रीय तथा शैक्षिक स्तरों पर मार्गदर्शन एवं परामर्श-कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों की सहायता के लिए तथा इनसे सम्बंधित समस्याओं को दूर करने के लिए भी शोध कार्य महत्वपूर्ण है।

शोध कार्य के प्रकार

शोध कार्य निम्नलिखित तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. मौलिक शोध- मौलिक शोध को बुनियादी शोध भी कहा जाता है। इस प्रकार के शोध की सहायता से परामर्श के आधारभूत सिद्धांतों एवं विभिन्न सेवाओं में प्रयुक्त होने वाली विधियों का मूल्यांकन किया जाता है।

2. परामर्श के क्षेत्र में शोध- विभिन्न परामर्श पद्धतियों की प्रभावशीलता देखने के लिए भी शोध क्रियाएँ की जानी चाहिए।

3. अनुवर्ती सेवा सम्बन्धी शोध- उन व्यक्तियों के अनुवर्ती कार्यक्रम के लिए शोध कार्य आवश्यक है जो नव-नियुक्त व्यक्तियों का मूल्यांकन करते हैं।

4. उपक्रम सेवा के लिए शोध- किसी व्यवसाय में प्रवेश से पहले या किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम को शुरू करने से पहले किस प्रकार की तैयारी की जानी चाहिए तथा इस तैयारी को किस प्रकार प्रभावशाली बनाया जा सकता है? इन सब बातों को जानने के लिए शोध कार्य की आवश्यकता होती है।

5. नियुक्ति की व्यवस्था में सुधार लाने के लिए शोध- नियुक्ति की प्रणाली में सुधार लाने के लिए व्यवस्था में परिवर्तन चाहिए तथा इसके लिए शोध कार्य आवश्यक है। इस सम्बन्ध में सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। नियुक्ति-व्यवस्था में सुधार के लिए क्रियात्मक-शोध भी किया जा सकता है।
6. शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं संबंधी शोध- शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाओं के बारे में शोध अनिवार्य है। इन सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं नवीनता पर ही शैक्षिक एवं व्यावसायिक परामर्श की कुशलता निर्भर करती है। नए-नए उद्योगों एवं व्यवसायों की सूची तैयार करने के लिए शोध कार्य करना आवश्यक है। इसी प्रकार व्यावसायिक सूचनाओं के प्रसार की नई-नई पद्धतियों के सम्बन्ध में भी शोध आवश्यक होता है।
7. व्यक्तिगत, व्यावसायिक एवं शैक्षिक परामर्श के प्रभाव पर शोध- व्यक्तिगत, व्यावसायिक और शैक्षिक परामर्श के प्रभाव को जानने के लिए शोध करना चाहिए। इस बात के लिए भी शोध करना आवश्यक हो जाता है कि परामर्श से समाज के विभिन्न वर्ग कितना लाभ उठा रहें हैं।

संक्षेप में, मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं की सफलता के लिए शोध कार्य चलता रहना चाहिए ताकि इस क्षेत्र में पैदा होने वाली समस्याओं का समाधान भी साथ-साथ ही होता रहे।
अब हम यह जानेंगे कि परामर्श की प्रक्रिया मार्गदर्शन से किस प्रकार भिन्न है।

4.9 परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर

हम्फ्रिज़ और ट्रैक्स्लर के अनुसार मार्गदर्शन के अंतर्गत वे सभी अनुभव एवं क्रिया-कलाप सम्मिलित हैं जो व्यक्ति को अपने को समझने, अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमतापूर्ण निर्णय लेने एवं अधिक प्रभावशाली ढंग से उन्नति की योजना प्रस्तुत करने में सहयोग देते हैं। परामर्श की व्याख्या करते हुए हम्फ्रिज़ और ट्रैक्स्लर लिखते हैं कि परामर्श सेवार्थियों में निहित सम्भावनाओं को उच्चतम स्तर तक विकसित करने में दी गयी सहायता के वैयक्तीकरण का प्रक्रम है। सहायता के वैयक्तीकरण का अभिप्राय है- सहायता को एक व्यक्ति तक सीमित रखना। मार्गदर्शन एवं परामर्श के अंतर को स्पष्ट करते हुए दोनों विद्वानों ने कहा है- “मार्गदर्शन एवं परामर्श दोनों एकार्थवादी शब्द नहीं हैं- परामर्श मार्गदर्शन में समाविष्ट है। परामर्श की प्रक्रिया में साक्षात्कार एवं मूल्यांकन का प्रयोग साधन के रूप में होता है।”
मार्गदर्शन एवं परामर्श के अंतर को निम्नलिखित प्रकार से भी स्पष्ट किया जा सकता है-

मार्गदर्शन	परामर्श
1. मार्गदर्शन की प्रक्रिया अत्यंत व्यापक है। 2. मार्गदर्शन व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। 3. मार्गदर्शन का सम्बन्ध व्यक्तिगत समस्याओं के साथ-साथ शैक्षिक, व्यावसायिक एवं अन्य समस्याओं से भी होता	1. परामर्श मार्गदर्शन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। 2. परामर्श एक समय पर केवल एक ही व्यक्ति का हो सकता है। 3. परामर्श प्रमुखतः व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य एवं भावात्मक समस्याओं के समाधान ढूंढने में सहायता प्रदान करता है।

है। 4. मार्गदर्शन किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रदान किया जा सकता है। आवश्यक नहीं है कि मार्गदर्शन प्रदान करने वाला व्यक्ति पूर्व-प्रशिक्षित ही हो। 5. मार्गदर्शन वस्तुतः पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों एवं पत्राचार के द्वारा भी संभव है।	4. परामर्शदाता के लिए पूर्व प्रशिक्षण लेना आवश्यक होता है। 5. परामर्श में परस्पर विचार-विमर्श व तर्क-वितर्क की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

अपनी प्रगति की जाँच करें

5. समन्वित परामर्श से आप क्या समझते हैं?

____

6. परामर्श एवं मार्गदर्शन में किस प्रकार के शोध कार्य किये जा सकते हैं? वर्णन कीजिए।

____

7. परामर्श एवं मार्गदर्शन एक-दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं?

____

4.10 विद्यालय में मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवा

कोठारी आयोग के अनुसार मार्गदर्शन एवं परामर्श को शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाना चाहिए और इसे प्राथमिक स्तर से ही शुरू किया जाना चाहिए। इसी सिफारिश के अनुरूप ही विद्यालय की क्रियाओं तथा परामर्श कार्यक्रमों का नियोजन बच्चों की आवश्यकताओं एवं उनके विकास के विभिन्न चरणों के अनुसार ही किया जाना चाहिए ताकि वे बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक क्षेत्रों में सुसमायोजित हो सकें। इस दृष्टि से बच्चों के विकास की अवस्था के अनुरूप तथा विभिन्न विद्यालय स्तरों के अनुरूप ही मार्गदर्शन कार्यक्रमों के उद्देश्य तय किये जाते हैं। संक्षेप में, विद्यालय के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रमों के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य होने चाहिए-

I. प्राथमिक स्तर

1. विशिष्ट उद्देश्य- इस स्तर में 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चे अर्थात् कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे शामिल किये जाते हैं। इस स्तर पर मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य होते हैं-

   क. घर से विद्यालय में विद्यार्थियों का संतोषजनक परिवर्तन या समायोजन करवाने में सहायता करना।

   ख. मूलभूत शैक्षिक कौशलों को सीखने में आरही कठिनाईयों के निदान में सहायता करना।

   ग. विद्यार्थियों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए ज़रूरतमंद विद्यार्थियों को पहचानने में सहायता, जैसे- प्रतिभाशाली, पिछड़े तथा दिव्यांग बच्चे।

   घ. विद्यालय छोड़ने वाले संभावित विद्यार्थियों को विद्यालय में ठहराए रखना।

   ङ. विद्यार्थियों को उनकी आगामी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजना बनाने में सहायता करना।

2. क्रियाएँ या गतिविधियाँ- इन उपरोक्त विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक स्तर पर कुछ क्रियाएँ करनी होंगी। इस स्तर पर अध्यापक की केन्द्रीय भूमिका होती है क्योंकि अध्यापक बच्चों की रूचियों, योग्यताओं, आवश्यकताओं तथा प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उत्तम स्थिति में होता है। प्राथमिक स्तर पर निम्नलिखित गतिविधियाँ या क्रियाएँ की जाती हैं-

   क. विद्यार्थियों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रम- इसमें विद्यालय वातावरण के बारे में बच्चों को तथा उनके माता-पिता को बताया जाता है। उनके माता-पिता को विद्यालय तथा मार्गदर्शन कार्यक्रम में माता-पिता एवं अभिभावक की भूमिका आदि से परिचित कराया जाता है।

   ख. निदानात्मक और मूलभूत कौशलों का परीक्षण- इस प्रकार के परीक्षणों का उपयोग प्राथमिक कक्षाओं में खूब किया जाना चाहिए ताकि दोषपूर्ण पठन की पहचान एवं निदान जल्दी ही किया जा सके क्योंकि दोषपूर्ण पठन से बहुत ही अवांछित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

   ग. प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की खोज- विशिष्ट प्रतिभा वाले विद्यार्थियों की विभिन्न विधियों और प्रविधियों की सहायता से खोज की जाती है। इन प्रतिभाओं में वैज्ञानिक योग्यता, सृजनात्मक योग्यता, नेतृत्व क्षमता, नाट्य तथा गायन क्षमता आदि शामिल होती हैं।

   घ. कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज- विद्यालयों में विभिन्न रूप से कुसमायोजित विद्यार्थियों की खोज करना अति आवश्यक है। इस प्रकार की खोज के लिए विभिन्न तकनीकों जैसे निरीक्षण, परीक्षणों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। कुसमायोजनों

और दोषों में सामान्य कुसमायोजन, आवेशपूर्ण व्यवहार, धीमी गति से सीखने वाले, न्यूनतम अभिप्रेरित बच्चे, वाणी दोष, अधिगम दोष, दृष्टि दोष, शारीरिक विकलांगता (दिव्यांग) तथा विशेष स्वास्थ्य समस्याएँ इत्यादि सम्मिलित हैं। इनके लिए उपयुक्त उपचारात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है ताकि यथासमय इनका उपचार किया जा सके। गरीबी, सामाजिक पिछड़ेपन आदि के निवारण के लिए विशेष विधियों का विकास करना पड़ेगा।

II. मिडिल स्तर

1. विशिष्ट उद्देश्य- कक्षा 6 से 8 तक मिडिल स्तर होता है। इन कक्षाओं में 11 से 14 वर्ष का आयु-समूह शामिल होता है। इन वर्षों में बच्चा किशोर अवस्था में प्रवेश कर जाता है। यह अवधि कई बच्चों के लिए बड़ी कठिन होती है। इस अवस्था में कई बच्चों को परिवार, विद्यालय तथा समाज में समायोजन-समस्याएँ प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं। इस स्तर पर परामर्श एवं मार्गदर्शन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

क. विद्यार्थियों को परिवार, विद्यालय और समाज में समायोजन में सहायता करना।

ख. विद्यार्थियों की योग्यताओं, अभिरूचियों एवं रूचियों को पहचानना और उनका विकास करना।

ग. विद्यार्थियों को विभिन्न शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचनाएँ प्राप्त करने के योग्य बनाना॥

घ. मुख्याध्यापक और अध्यापकों को उनके विद्यार्थियों को समझने तथा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।

ङ. विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक योजनाएँ बनाने में सहायता करना।

2. क्रियाएँ या गतिविधियाँ- उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम या क्रियाएँ की जा सकती हैं-

2.1 सामान्य क्रियाएँ-

क. विद्यालय के मुख्याध्यापक के साथ मार्गदर्शन एवं परामर्श कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करना।

ख. विद्यालय-संकाय को इससे परिचित कराना॥

ग. विद्यालय के मुख्याध्यापक द्वारा विद्यालय मार्गदर्शन समिति बनाना जिसमें कैरियर अध्यापक, शारीरिक शिक्षा अध्यापक और अध्यापक-अभिभावक एसोसिएशन का एक प्रतिनिधि शामिल हो।

2.2 विशिष्ट क्रियाएँ-

क. विद्यार्थियों से सम्बंधित तथ्यों को इकट्ठा करना जैसे पहचान सम्बन्धी सूचनाएँ, घर और परिवार की पृष्ठभूमि सम्बन्धी आँकड़े तथा शैक्षिक उपलब्धियाँ।

ख. अभिविन्यास कार्यक्रम, जैसे विद्यालय वातावरण, पाठ्यक्रम, विद्यालय में सुविधाओं के बारे में परिचय, नियमित अध्ययन द्वारा आदतों से परिचय तथा सामाजिक समायोजन के बारे में तथा खाली समय के सदुपयोग के बारे में अभिविन्यास।

ग. नए विद्यार्थियों के अभिभावकों का अभिविन्यास कार्यक्रम, जैसे विद्यालय और विद्यालय मार्गदर्शन कार्यक्रम में माता-पिता की भूमिका के बारे में अभिविन्यास।

घ. संचित अभिलेख पत्र शुरू करना।

ङ. अल्प-उपलब्धि वाले और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहचान करना।

च. बुद्धि परीक्षण की व्यवस्था करना।

छ. अधिगम वातावरण में सुधार करना।

ज. कमजोर बच्चों के लिए उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।

झ. परामर्श देना या समस्या को ध्यान में रखते हुए विशेषज्ञों के पास भेजना।

III. निम्न सेकेंडरी स्तर

इसमें 9वीं और 10वीं कक्षाएँ शामिल होती हैं। इसमें 14 से 16 वर्ष की आयु के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जाता है। इस स्तर पर विद्यार्थी 10 वर्ष की शिक्षा पूरी कर लेते हैं। इसके पश्चात उनके लिए तीन रास्ते बचते हैं-

i. वे किसी कार्य-शक्ति में प्रवेश लें।
ii. वे किसी व्यावसायिक कोर्स में प्रवेश लें।
iii. वे उच्च-शिक्षा प्राप्त करें ताकि वे किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में दाखिल हो सकें।

1. विशिष्ट उद्देश्य-

क. विद्यार्थियों को उनकी दुर्बलताओं और शक्तियों को समझने के योग्य बनाना।

ख. शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचना इकट्ठी करने के योग्य बनाना।

ग. विद्यार्थियों को शैक्षिक और व्यावसायिक चयन करने में सहायता देना।

घ. विद्यार्थियों को उनकी समस्याओं के समाधान में सहायता करना। इन समस्याओं में विद्यालय और घर में व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन की समस्याएँ भी शामिल हैं।

ङ. व्यावसायिक सूचनाओं के अवसर प्रदान करना।

च. विद्यार्थियों को संचित अभिलेखों, परीक्षण परिणामों आदि से उनके बारे में उन्हीं को सूचनाएँ उपलब्ध कराना।

छ. विद्यार्थी में स्वयं-प्रत्यय विकसित करना।

2. विशिष्ट क्रियाएँ-

क. योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों, उपलब्धियों और अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के बारे में आँकड़े एकत्रित करना।

ख. कार्यों से परिचित कराना।

ग. क्षेत्र-भ्रमणों का आयोजन करना।

घ. कैरियर कांफ्रेंस और कैरियर प्रदर्शनी का आयोजन।

ङ. कोर्स का चयन करने में सहायता करना।

च. अल्प-उपलब्धि और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों की पहचान करना।

छ. माता-पिता को मार्गदर्शन प्रदान करना।

ज. समस्या को देखते हुए विशेषज्ञों और परामर्शदाता के पास भेजना।

IV. सीनियर सेकेंडरी स्तर

इस स्तर में 11वीं और 12वीं कक्षाएँ सम्मिलित हैं और इस स्तर में 16+ से 18+ वर्ष का आयु वर्ग शामिल होता है।

1. विशिष्ट उद्देश्य-

क. निम्न सेकेंडरी स्तर के आधार पर प्राप्त सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों को उनके कोर्स के चयन में सहायता करना।

ख. उनकी शैक्षिक-रूचियों के सन्दर्भ में उनके कैरियर के चयन में सहायता करना।

ग. व्यक्तिगत-सामाजिक समायोजन के क्षेत्र में सहायता करना।

इन विशिष्ट उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्न सेकेंडरी स्तर के विशिष्ट उद्देश्य भी उच्च सेकेंडरी स्तर में शामिल किये जाते हैं।

2. विशिष्ट क्रियाएँ-

क. सूची सेवा- व्यक्तिगत संचित अभिलेख पत्र रखना जारी रहता है। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए विभिन्न परीक्षणों तथा विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

ख. व्यावसायिक सूचना सेवा- इस स्तर पर स्थानीय व्यावसायिक अवसरों और स्वयं-रोज़गार अवसरों के बारे में सूचनाएँ प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिए कैरियर कांफ्रेंस, क्षेत्रीय यात्राएँ, कैरियर वार्ताएँ आदि की व्यवस्था की जाती है। स्थानीय रोज़गार अवसरों के बारे में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए निर्देशन-कार्यकर्ता को रोज़गार कार्यालय से मिलकर कार्य करना होता है और इसी प्रकार क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों से मेल-जोल रखना जरूरी होता है। इस स्तर पर विद्यार्थी को उसकी रूचि के व्यवसाय के विस्तृत अध्ययन में भी सहायता देने के प्रयास किये जाते हैं।

ग. परामर्श-सेवा- व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक-व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिए विद्यार्थियों को परामर्श-सेवा उपलब्ध कराई जाए। यदि प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध नहीं हैं तो विद्यार्थियों को अन्य अभिकरणों के पास भेज देना चाहिए। परामर्शदाता विभिन्न मार्गदर्शन सेवाओं के द्वारा विद्यार्थियों की, सही कोर्स और कैरियर चुनने में तथा एक वयस्क की भूमिका निभाने की तैयारी में सहायता करता है।

विद्यालय निर्देशन-कार्यक्रम में स्कूल-परामर्शदाता की भूमिका-

मूलरूप से एक परामर्शदाता शिक्षा के क्षेत्र से ही एक विशेषज्ञ होता है। परामर्शदाता से मार्गदर्शन गतिविधियाँ को अन्य कर्मचारियों की तुलना में अधिक सुचारू रूप से चलाने की आशा की जाती है। भारतीय परिस्थितियों में परामर्शदाता पूर्ण-अवधि परामर्शदाता, अंश-कालीन परामर्शदाता और विजिटिंग स्कूल परामर्शदाता के रूप में होता है।

परामर्शदाता के रूप में एक मार्गदर्शन-कार्यकर्ता के उत्तरदायित्वों में निम्नलिखित विशिष्ट कार्य सम्मिलित किये जाते हैं-

1) निदानात्मक
2) चिकित्सात्मक
3) मूल्यांकन और शोध

प्रत्येक विशिष्ट कार्य-क्षेत्र में विभिन्न विशिष्ट सेवाएँ और कौशल सम्मिलित किये जाते हैं। विद्यालय मार्गदर्शन कार्यक्रम को बड़े ध्यानपूर्वक नियोजित करने के पश्चात् एक परामर्शदाता क्रमबद्ध ढंग से कार्य

करता है। इसके लिए परामर्शदाता विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करता है, भौतिक और अन्य साधनों को इकट्ठा करता है तथा प्रशासनिक अधिकारियों से सहयोग सुनिश्चित करता है।
सामान्य रूप से परामर्शदाता विभिन्न क्रियाओं को चलाता है। एक स्कूल परामर्शदाता के विभिन्न कार्य निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वर्णित किये जा सकते हैं-

क. विद्यार्थियों का अभिविन्यास- नए विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम से परिचित कराया जाता है ताकि वे इस नए वातावरण में समायोजित हो सकें और विषय-वस्तु को सीखने के लिए स्वयं को स्वतंत्र महसूस कर सकें। परामर्शदाता यह सब व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से कर सकता है। इसके लिए वह सभाओं और बहसों का आयोजन कर सकता है।

ख. विद्यार्थी-मूल्यांकन- परामर्शदाता के लिए सूचना-स्रोत और सामान एक परामर्श कार्यक्रम की आवश्यकता होती है ताकि विद्यार्थियों की परामर्शन-आवश्यकताओं को पहचाना जा सके तथा विद्यार्थियों को स्वयं को समझने में सहायता प्रदान की जा सके एवं किसी कार्य-विधि को अपनाने में सहायता दी जा सके। एक परामर्शदाता विद्यार्थी के बारे में अर्थपूर्ण सूचनाएँ विद्यार्थियों के साथ साक्षात्कार, उनके अभिभावकों के साथ साक्षात्कार तथा विद्यार्थियों से सम्बंधित अध्यापकों के साथ साक्षात्कार करके तथा विद्यालय के अन्य व्यक्तियों से एकत्रित करता है। परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की व्यवस्था करता है, शैक्षिक रिकॉर्ड तथा अन्य रिकॉर्ड को इकट्ठा करता है तथा इन्हें क्रमबद्ध तरीके से रखता है। परामर्श-साक्षात्कार में परामर्शदाता द्वारा ये सभी सूचनाएँ विद्यार्थियों को उपलब्ध कराई जाती हैं तथा उन्हें इनकी व्याख्या बताई जाती है। इन सूचनाओं की व्याख्या परामर्शदाता विद्यार्थियों के माता-पिता और उनके अध्यापकों को भी आवश्यकता होने पर बताता है।

ग. शैक्षिक और व्यावसायिक सूचना सेवा- परामर्शदाता सभी सूचनाओं में समन्वय के लिए उत्तरदायी होता है। वह विद्यार्थियों और उनके माता-पिता को संभावनाओं और अवसरों का पता लगाने में सहायता करता है तथा इन सूचनाओं के प्रयोग में भी उनकी सहायता करता है। परामर्शदाता विद्यालय में 'कैरियर कॉर्नर' स्थापित करने में सहायता कर सकता है तथा कैरियर अध्यापक को सहायता प्रदान कर सकता है। वह शैक्षिक और व्यावसायिक सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए विभिन्न विधियों को अपना सकता है, उनका वर्गीकरण करता है तथा उसे पूर्ण रखता है। एक परामर्शदाता के पास रोज़गार के बारे में ताज़ी सूचनाएँ होती हैं तथा वह विभिन्न अधिकारियों और नियुक्तिकर्ताओं के साथ व्यक्तिगत संपर्क बनाए रखता है।

परामर्शदाता पर सूचनाओं को बाँटने का उत्तरदायित्व भी होता है। यह कार्य वह शैक्षिक भ्रमणों, अतिथि भाषणों, कैरियर कांफ्रेंस और कैरियर अध्ययन परियोजना आदि द्वारा कर सकता है।

घ. परामर्श साक्षात्कार करना- एक परामर्शदाता विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें परामर्श प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होता है। साक्षात्कार के द्वारा वह विद्यार्थियों के अनुभवों का मूल्यांकन और इन अनुभवों को उनके वास्तविक व्यवहारों से सम्बद्ध करके

उनकी सहायता करता है। उसका अधिकतर कार्य शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करना ही है। परामर्शदाता विद्यार्थियों में समस्या समाधान के कौशलों और स्वतंत्र चिंतन, योजना, निर्णय लेने की योग्यता का विकास करने में सहायता प्रदान करता है। इसके लिए वह विद्यार्थियों के छोटे समूह भी बना सकता है।

ङ. स्थानन- बाहरी संस्थाओं और विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों के बीच एक कड़ी का कार्य करने का उत्तरदायित्व भी परामर्शदाता पर होता है ताकि विद्यार्थियों को विभिन्न सूचनाएँ प्राप्त हो सकें।

च. शोध और मूल्यांकन- क्या विद्यालय में मार्गदर्शन कार्यक्रम द्वारा वास्तव में वांछनीय उद्देश्य प्राप्त कर लिए गए हैं तथा क्या विद्यार्थियों की आवश्यकताएँ पूरी हो गयी हैं, इसे जानने के लिए परामर्शदाता शोध करके एक योजना तैयार करता है। इस सन्दर्भ में परामर्शदाता शोध और मूल्यांकन के कई कार्यक्रम करता है।

4.11 विशिष्ट बच्चों के लिए परामर्श

प्रकृति का नियम है कि सम्पूर्ण संसार में कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते हैं वे पर्याप्त रूप में एक-दूसरे से भिन्नता व्यक्त करते हैं। यहाँ तक कि जुड़वाँ बच्चे जो कि शक्ल-सूरत में तो एक जैसे दिख सकते हैं लेकिन वे भी अपने स्वभाव, बुद्धिलब्धि, रूचि, शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विकास में एक-दूसरे से भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। इन विभिन्नताओं का कारण व्यक्ति के अपने हाथों में नहीं होता है। ये विभिन्नताएँ वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। विभिन्नताओं के ज्ञान से हम यह अंदाज़ा लगा सकते हैं कि कोई व्यक्ति आने वाले जीवन में किस सीमा तक सफलता प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यक्ति व्यवहार विभिन्नताओं द्वारा नियंत्रित होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि ये विभिन्नताएँ ही व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार को स्वरूप प्रदान करती हैं। व्यक्ति की विभिन्नताओं के अनुकूल परिस्थितियों का विकास किया जाना भी अत्यंत आवश्यक है ताकि व्यक्ति का उपयुक्त समायोजन किया जा सके तथा वह कठिन परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बन सके। व्यक्ति की इन विभिन्नताओं को माप कर उनके अनुकूल मार्गदर्शन कार्यक्रम का संचालन किया जाना चाहिए। व्यक्ति की इन विभिन्नताओं के अनुकूल विशिष्ट मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

आगे विशिष्ट आवश्यकताओं वाले समूह को दिए जाने वाले विशिष्ट मार्गदर्शन के स्वरूप की व्याख्या की गयी है।

1. प्रतिभाशाली बच्चों के लिए परामर्श की विशिष्ट कक्षाएँ

प्रतिभाशाली बच्चों से तात्पर्य उन बच्चों से है जो बुद्धि तथा उपलब्धि में सामान्य बच्चों से वरिष्ठता प्रदर्शित करते हैं तथा कार्य को करने के प्रयास में निरंतर उच्च स्तर बनाए रखते हैं। प्रत्येक कक्षा तथा विद्यालय में प्रतिभाशाली बच्चे होते हैं। इनका पता विभिन्न प्रविधियों जैसे बुद्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, अवलोकन का उपयोग करके लगाया जा सकता है।

प्रतिभाशाली बच्चों के लिए विशिष्ट परामर्श की आवश्यकता होती है ताकि उनका उचित समायोजन किया जा सके तथा उनकी योग्यताओं के अनुकूल विकास के अवसर प्रदान किये जा सकें। प्रतिभाशाली बच्चों के लिए निम्नलिखित प्रयास महत्वपूर्ण हो सकते हैं-

क. तीव्र प्रोन्नति- प्रतिभाशाली बच्चों के सीखने की गति तीव्र होती है। इसलिए ऐसे बच्चों को तीव्र कक्षा प्रोन्नति की व्यवस्था किये जाने से बच्चों को अपनी योग्यताओं के अनुकूल विकास का उचित अवसर प्राप्त हो सकता है।

ख. पाठ्यक्रम समृद्धि- प्रतिभाशाली बच्चे पाठ्यक्रम को सीखने में सामान्य बच्चों से कम समय लेते हैं। इसलिए उनके समय के सदुपयोग के लिए पाठ्यक्रम में अतिरिक्त सामग्री तथा क्रियाकलापों को जोड़कर पाठ्यक्रम को उनके लिए उपयोगी बनाया जा सकता है।

ग. योग्यता समूह- बच्चों की योग्यता के अनुसार उनके समूह बना लिए जाएँ तथा विशेष योग्यता वाले अध्यापकों को विशेष समूह को पढ़ाने की जिम्मेदारी दी जाए तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित मार्गदर्शन कार्यकर्ता द्वारा उन्हें शैक्षिक तथा व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान किया जाए क्योंकि सभी अध्यापक उन छात्रों को पढ़ाने में सक्षम नहीं होते हैं।

घ. विशेष विद्यालय और कक्षाएँ- प्रतिभावान बच्चों के लिए विशेष विद्यालय तथा कक्षाओं की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे बच्चों की विशेषताओं के अनुसार उन्हें विकसित करने की पर्याप्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

2. पिछड़े बच्चों के लिए परामर्श की व्यवस्था

पिछड़े बच्चे वे होते हैं जो अपनी आयु के अन्य बच्चों की तुलना में अत्यधिक शैक्षिक दुर्बलता प्रदर्शित करते हैं। ऐसे बच्चों की रूचि एवं ध्यान थोड़े समय तक ही बनी रहती है तथा इनके सीखने की गति मंद होती है। पिछड़े बच्चों के पिछड़ेपन के विभिन्न कारण हो सकते हैं यथा- शारीरिक, मानसिक, वातावरण सम्बन्धी तथा सामाजिक। निम्नलिखित प्रबंध पिछड़े बच्चों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं-

क. व्यक्तिगत ध्यान- पिछड़े बच्चों की ओर विशेष एवं व्यक्तिगत ध्यान दिए जाने की आवश्यकता होती है क्योंकि ये बच्चे सामान्य बच्चों से बहुत पीछे रह जाते हैं और अध्यापक द्वारा दिया गया सामूहिक मार्गदर्शन समझ नहीं पाते हैं।

ख. पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था- पिछड़े बच्चे शैक्षिक उपलब्धि में पिछड़े होने के बावजूद अन्य क्षेत्रों में काफी सफल हो सकते हैं। इसलिए इनके लिए विद्यालय में विभिन्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था की जानी आवश्यक है ताकि पिछड़े बच्चे अपनी रूचि के अनुकूल अन्य योग्यताओं का विकास कर सकें।

ग. विशिष्ट पाठ्यक्रम तथा शिक्षण विधियाँ- पिछड़े बच्चों के शिक्षण के लिए सामान्य पाठ्यक्रम तथा सामान्य शिक्षण विधि प्रभावी नहीं होती है। इनके लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम

तथा विशिष्ट शिक्षण विधियाँ जिनमें व्यावहारिकता की प्रधानता हो, प्रयोग की जानी चाहिएँ तथा विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिएँ। इनके लिए ऐसी शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाये जिनमें सीखने की गति धीमी हो तथा जहाँ अभ्यास पर बल दिया जाता हो।

घ. हस्त उद्योग की शिक्षा- पिछड़े बच्चे शैक्षणिक स्तर पर पीछे रह जाते हैं। इस कारण वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते हैं। अतएव उन्हें हस्त उद्योगों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इससे उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा तथा विद्यालय की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात वे किसी व्यवसाय को शुरू करके अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं।

3. बाल अपराधी बच्चे

ऐसा कोई भी बच्चा जिसका व्यवहार सामान्य सामाजिक व्यवहार से इतना भिन्न हो जाए कि उसे समाज-विरोधी कहा जा सके, बाल-अपराधी कहलाता है। बाल-अपराध संवेगात्मक द्वंद्वों का परिणाम होता है। बच्चा अपराध करके इन संवेगात्मक द्वंद्वों से मुक्ति पाना चाहता है। संवेगात्मक द्वंद्वों के अलावा बच्चे के सामाजिक, पारिवारिक, विद्यालायी तथा सामुदायिक वातावरण के साथ शरीर रचना एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि से सम्बंधित अनेक कारण होते हैं जो बाल-अपराध का कारण बनते हैं।

बाल अपराधी बच्चों के लिए परामर्श की व्यवस्था-

1. बच्चे के वातावरण में सुधार- बच्चे के पारिवारिक, विद्यालयी तथा सामाजिक वातावरण का उसके व्यवहार पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। परामर्श तकनीकों के द्वारा बच्चे के वातावरण का अध्ययन करके, वातावरण के उन कारकों का पता लगाया जाता है जिनके कारण बच्चे बाल अपराध की ओर अग्रसर होते हैं। साथ ही इसके द्वारा वातावरण में सुधार हेतु सुझाव तथा विभिन्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं ताकि बाल अपराध की रोकथाम की जा सके।
2. सुधारात्मक प्रयत्न- ऐसे बच्चे जो किन्हीं कारणवश अपराधी बन चुके हैं उन्हें विभिन्न माध्यमों के द्वारा अपराधपूर्ण जीवन से मुक्ति दिलाने के प्रयास सुधारात्मक प्रयत्न के अंतर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। इसमें निम्नलिखित प्रयास शामिल हैं-

   क. बाल अपराधियों के अचेतनमन का विश्लेषण कर उनकी दबी हुई इच्छाओं तथा संवेगों का पता लगाकर उपचार किया जाना चाहिए।

   ख. बाल अपराधियों को उनके दोषपूर्ण वातावरण से निकालकर पूर्ण सहानुभूति व मधुर व्यवहार दिखाया जाना चाहिए तथा समाज एवं अभिभावकों को इन बच्चों के प्रति अपने रवैये को बदलने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

   ग. ऐसे बच्चों के लिए विशेष बाल न्यायालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए जिनमें विशेष रूप से प्रशिक्षित न्यायाधीश नियुक्त हों तथा ऐसे बच्चों को जेल में न भेजकर सुधार गृहों में भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए।

अपनी प्रगति की जाँच करें

8. विद्यालय में परामर्शदाता के उत्तरदायित्वों एवं भूमिका पर अपने विचार प्रस्तुत करें।

9. विद्यालय में किशोरों के लिए किस प्रकार के मार्गदर्शन एवं परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है? विवेचना कीजिए।

10. बाल अपराधियों की समस्या समाधान के लिए परामर्श सेवाएँ किस प्रकार उपयोगी साबित होती हैं?

4.12 सारांश

परामर्श एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें अनेक उपागमों एवं प्रविधियों को प्रयुक्त करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास, समस्याओं का समाधान, व्यवहारगत या समायोजनात्मक समस्याओं के परिहार एवं उपचार द्वारा व्यक्ति के जीवन को सहज, उद्देश्यपूर्ण एवं संतोषप्रद बनाने का प्रयत्न किया जाता है। परामर्श समस्त मार्गदर्शन कार्यक्रम का सक्रिय भाग है। परामर्श व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है तथा दो व्यक्तियों (परामर्शदाता एवं सेवार्थी) के बीच व्यावसायिक सम्बन्ध की प्रक्रिया है। परामर्श मधुर एवं सहयोगात्मक वातावरण में ही संभव होता है। परामर्श की प्रक्रिया में बातचीत, वार्तालाप एवं बहस द्वारा समस्या को स्पष्ट किया जाता है। परामर्श लोकतांत्रिक होता है। यह लोकतांत्रिक पद्धति की स्थापना करता है। परामर्श व्यक्ति को चयन करने और उस पर अमल करने में सहायता करता है। इसमें साक्षात्कार की भूमिका अहम् होती है और इसके द्वारा परामर्श की प्रक्रिया की सफलता निर्धारित होती है। सेवार्थी की समस्या एवं व्यक्तित्व के अनुरूप प्रविधियों एवं उपागमों का चयन कर उन समस्याओं का निदान किया जाता है। विद्यालयों में विभिन्न स्तर एवं आयु-वर्ग के लिए इस सन्दर्भ में विशिष्ट कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है जिसमें स्कूल परामर्शदाता की भूमिका अहम् होती है। विशिष्ट बच्चों के लिए परामर्श प्रक्रिया की योजना बनाते समय विशेषज्ञों की सहायता लेते हुए उनकी समस्या का निदान युक्तिपूर्ण तरीके से किया जाता है।

4.13 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

1. 4.3 परामर्श- संकल्पना, अर्थ एवं परिभाषा, परामर्श की प्रकृति

2. 4.4 विभिन्न परामर्श सिद्धांत
3. 4.5 परामर्श में विधियाँ एवं तकनीक
4. 4.6 परामर्श के लिए साक्षात्कार की आवश्यकता
5. 4.7 परामर्श में हाल की प्रवृत्तियाँ
6. 4.8 परामर्श और मार्गदर्शन में शोध
7. 4.9 परामर्श और मार्गदर्शन में अंतर
8. 4.10 विद्यालय निर्देशन-कार्यक्रम में परामर्शदाता की भूमिका
9. 4.11 विद्यालय में मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाएँ
10. 4.11 विशिष्ट बच्चों के लिए परामर्श

4.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Aggrawal, J.C. (1989) Educational and Vocational Guidance and Counselling, Delhi.
2. Henson James C. (1971) Group Guidance and Counselling in Schools, Appetton Century Craft, New York.
3. Myers George E. (1941) Principles and Techniques of Vocational Guidance. Tata McGraw Hill Co. New York.
4. पाण्डे, के.पी. (1987) शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के आधार, अमिताश प्रकाशन, दिल्ली
5. शर्मा, आर.ए. (2004) शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा परामर्श, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ
6. ओबराय, एस. सी. (1996) शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श, लॉयल बुक डिपो, मेरठ